मन
की
अपार शक्ति

★

गोविन्दराम हासानन्द
नई सड़क, दिल्ली ।

❀ ओ३म् ❀

मन की अपार शक्ति

[शिव सङ्कल्प सूक्त की व्याख्या]

लेखक

श्री सुरेशचन्द्र वेदालंकार

एम० ए० एल० टी०

डी० बी० कालेज, गोरखपुर

द्वितीय संस्करण]

[मूल्य १ रु० २५ पै०

प्रकाशक
गोविन्दराम हासानन्द
आर्य साहित्य भवन,
४४०८ नई सड़क, दिल्ली

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मुद्रक
सत्यकाम एम० ए०
अध्यक्ष, मोहन प्रिंटर्स
२०६८, बाजार सीताराम
दिल्ली–६

मन का स्वरूप और शक्तियां

यजुर्वेद के शिव सङ्कल्प सूक्त का आधार मन है। अतः इस सूक्त में अन्तर्निहित विचारों को समझने के लिये हमें मन के स्वरूप एवं उसकी सत्ता पर पहले विचार करना चाहिये। मन को अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार की परिभाषा की है और इसकी जितनी परिभाषा करने का प्रयत्न किया गया है उतना ही यह अस्पष्ट होता गया है। कारण यह कि मन शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है। जैसे मेरा 'दूध पीने का मन नहीं' 'अपने भाई की असफलता से उसके मन को धक्का लगा।' 'उसके मन में यह बात नहीं' और इन प्रयोगों के अतिरिक्त यह कोई दृश्य वस्तु भी तो नहीं कि इसे स्पष्ट दिखलाया जा सके। मन एक अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु है। वेदान्त शास्त्र के अनुसार मन एक इन्द्रिय है। और मन के परे आत्मा को मानने की पद्धति है। हम इसे दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि मान लीजिये कि एक सिरे पर चेतना है और दूसरे पर शरीर व्यापार द्वारा चेतना को दिया जाने वाला प्रत्युत्तर है। इन दो सिरों के बीच में कोई एक पदार्थ है और इस पदार्थ पर चेतना शक्ति का जिस तरह अथवा जितना परिणाम होगा उसी तरह और उतनी ही शरीर की क्रिया होती हैं। इसी पदार्थ को हम मन कहते हैं। कहने का भाव यह है कि चेतना शक्ति और उसके द्वारा उत्पन्न होने वाली शरीर क्रिया के बीच में जो कुछ है उसमें मन का अन्तर्भाव होता है।

हमारा शरीर बाहरी वस्तुओं के सम्पर्क में आता है। और यह सम्पर्क कभी अनायास होता है और कभी स्वेच्छा से। जैसे अचानक ही हवा के संस्पर्श से शरीर में चेतना सी आती है और कभी हमको स्वेच्छा से गर्मी दूर करने के लिए पंखा करना पड़ता है। परन्तु यह संयोग चाहे स्वेच्छा से हो या संयोग से इतना निश्चित है कि बाह्य वस्तुओं से इन्द्रियों का संयोग और शरीर की हलचल का कार्य कारण सम्बन्ध अविकल चलता रहता है।

हमारे शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं। नाक, कान, आंख, त्वचा और जिह्वा ये पांच ज्ञानेन्द्रियां और हाथ, पैर, मुंह, गुदा और उपस्थ कर्मेन्द्रियां हैं। एक कारखाने में बाहर का माल भीतर लाने के लिए जिस प्रकार अनेक द्वार होते हैं ठीक उसी प्रकार बाहर का ज्ञान भीतर लाने के लिए यह ज्ञानेन्द्रियां होती हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों को वस्तु का ज्ञान नहीं होता पर यह केवल बाह्य पदार्थ का संस्कार अन्दर लाने का कार्य करती हैं और प्रत्येक संस्कार के समाचार मन को पहुंचते हैं। मन तक इन संस्कारों को ले जाने का काम असंख्य अन्तर्मुख ज्ञान तन्तु (Afferent Nerves) करते हैं। मन इन सब ज्ञानों का विभाजन करता है। आराम और तकलीफ देने वाले तत्वों को अलग अलग करता है और कर्मेन्द्रियों तक सन्देश भेज कर उनसे काम करवाना भी इसी का काम है। और इस सन्देश के लिए बहिर्मुख ज्ञान तन्तु (efferent nerves) होते हैं और यह सन्देश कर्मेन्द्रियों को देते हैं और वे अपना काम प्रारम्भ कर देती हैं। मान लीजिये आपने साँप देखा अन्तर्मुख ज्ञान तन्तुओं ने मन तक सन्देश पहुँचाया और मन ने पैरों को बहिर्मुख द्वारा सन्देश दिया कि भागो और हम भागना शुरू कर देते हैं।

क्या कभी आपने सोचा है 'आपका पुत्र मर गया' और 'हमारा पुत्र मर गया' इन दोनों शब्दों का भिन्न २ शरीर व्यापार क्यों हुआ।

मान लीजिये कि एक आदमी के पास तार आया कि आपका पुत्र मर गया। यहाँ इन अक्षरों से मनुष्य की आँख का सम्पर्क हुआ और इस सम्पर्क का परिणाम यह हुआ कि किसी का हार्ट फेल हो सकता है, कोई रोने लग सकता है परन्तु केवल 'आपका' के स्थान पर 'हमारा' शब्द लिख दिया जाय तो इसकी प्रतिक्रिया बहुत कम हो जायेगी। हम केवल अफसोस करके ही रह जायेंगे। इसका मतलब यह हुआ कि इन्द्रियों के बाह्य पदार्थों से संसर्ग होने पर ही शरीर व्यापार होता है यह बात ठीक नहीं। क्योंकि यदि पदार्थों से संसर्ग होने पर ही शरीर व्यापार होता तो 'आपका पुत्र मर गया' इस एक वाक्य का प्रत्येक व्यक्ति पर एक ही असर होना चाहिए था। और 'आपका' तथा 'हमारा' यह दोनों अक्षर ही हैं अतः इन दोनों का भी एक ही जैसा प्रभाव शरीर पर होना चाहिये था। परन्तु ऐसा होता नहीं। इसलिए हमें मानना पड़ेगा कि चेतना और शरीर व्यापार के बीच में कोई पदार्थ है जिस पदार्थ पर चेतना शक्ति का जिस तरह का और जितना परिणाम होगा उसी तरह और उतनी ही शरीर क्रिया होती रहती है।

और यही कारण है कि 'आपका पुत्र मर गया' और 'हमारा पुत्र मर गया' इन दोनों शब्द-समूहों का मनुष्य पर भिन्न २ शरीर व्यापार होता है।

इसलिए मन एक अदृश्य शक्ति है जो आचरण को सोद्देश्य और सुसंबद्ध बनाती है। हम अनुभव मन के द्वारा करते हैं और उस अनुभव का प्रकार यह होता है कि जब किसी पदार्थ का

हमारी इन्द्रियों से सम्पर्क होता है तो उस पदार्थ को हम जानते हैं उसका कुछ अर्थ समझते हैं, उसका हमें ज्ञान होता है पर पदार्थ का ज्ञान यदि मन को न हो तो नहीं हो सकता। इसे हम अनुभव का ज्ञानात्मक प्रकार कह सकते हैं। और ज्ञान के बाद वह पदार्थ हमें अच्छा लगता है या बुरा लगता है इसे रागात्मक ज्ञान कहते हैं। और उस पदार्थ के सम्बन्ध में किसी प्रकार की इच्छा चाहे वह इच्छा उस पदार्थ में परिवर्तन करने की हो और चाहे उसे जैसे का तैसा बना रहने देने की हो क्रियात्मक अनुभव कहलाती है।

इस प्रकार अब तक हमने मन क्या है, इस विषय पर विचार किया। और हम यह कह सकते हैं मन विभिन्न अनुभवों का अधिष्ठान है, आधार है और कारण है। यद्यपि हम मन क्या है यह दिखला तो नहीं सकते पर इतना स्वीकार किये बिना काम नहीं चल सकता कि इन दशाओं का प्रेरक आधार तथा स्वामी कुछ है अवश्य जो इस शरीर व्यापार का स्थिर आधार है। उसे हम चाहे किसी नाम से कहें। पर है वह मन और यह मन किस तरह कार्य करता है यह हम आगे विचार करेंगे।

अब मन की शक्तियों पर विचार कीजिये —

शिव-सङ्कल्प सूक्त मनोविज्ञान का आधार है। मन कोई यान्त्रिक वस्तु नहीं। मन युक्त प्राणी किसी उद्देश्य से प्रेरित होकर कार्य करता है, उसमें शिक्षा ग्रहण करने की शक्ति होती है। उसके आचरण में हमें सुसम्बद्धता और सक्रमता प्राप्त होती है। यह सुसम्बद्धता और सक्रमता कैसे आती है ? वास्तव में इस विशिष्टता को जन्म देने वाली मन की कुछ शक्तियां हैं जिन्हें हम मूल शक्तियां कहते हैं और जिन के होने से ही मानसिक

व्यवहार सम्भव हो सकता है। उन शक्तियों को हम संचय (Mnenv) सम्प्रयोजनता (Horme) और सम्बद्धता (Cohesion) शक्तियां कहते हैं।

इस प्रकार अब तक हमने देखा मन की तीन शक्तियां हैं संचय शक्ति, यह बढ़कर स्मृति बन जाती है। प्राणियों का आचरण सोद्देश्य है। इसके अतिरिक्त हमारा मन अपने अनुभवों को क्रमहीन, असम्बद्ध दशा में नहीं रहने देता वह उन्हें क्रमबद्ध करके, सजा कर एक ही प्रकार के अनुभवों को पारस्परिक सम्बन्ध सूत्र में पिरो कर रखा करता है। इन सब बातों का शिवसंकल्प सूक्त की व्याख्या में ध्यान रखना आवश्यक है।

मानव मस्तिष्क का एक विशिष्ट गुण है कि वह अराजकता, असंबद्धता पसन्द नहीं करता। हमारे अनुभव एवं संस्कार सुसंगठित एवं सुसम्बद्ध होते रहते हैं। परन्तु इतना निश्चित है हमारे मस्तिष्क में एक क्रिया यह होती रहती है कि एक शक्ति के जितने भी संस्कार हैं या पदार्थ हैं उनके अनुभव का संचय करती रहती है। वास्तव में मन में अनुभव से उत्पन्न संस्कारों को स्थायी बनाए रखने की अद्भुत शक्ति है, जो अनुभव एक बार किया जाता है वह बिल्कुल विस्मृत कभी नहीं होता। हम कह सकते हैं कि उसकी स्मृति थोड़ी बहुत आजन्म बनी रहती है। मन की वह शक्ति जिसके कारण यह स्मृति अथवा संस्कार बच रहता है संचय कहलाती है। इसे ही अंग्रेजी में (Mneme) कहते हैं। नेमे और स्मृति में भेद है। स्मृति में मनुष्य की चेतना भी काम करती है। वास्तव में मनुष्य के मस्तिष्क में एक भूरे रंग का कोमल पदार्थ है। हम जो पदार्थ देखते, सुनते, अथवा अनुभव करते हैं इसकी लकीर इस पदार्थ पर पड़ती जाती है। जैसे मान लीजिये कि मैंने

देहरादून में ज्योत्स्ना को बीमार देखा और उसको देखने के लिये डाक्टर आया। डाक्टर ने उसे देखा। अब डाक्टर, ज्योत्स्ना मकान, देहरादून आदि सभी की उस भूरे रंग के पदार्थ पर लकीर पड़ती जाती है। इस प्रकार वह शक्ति जो इन संस्कारों को अमिट बनाती है उसे हम संचय कहते हैं। यदि यह हमारे अनुभव बिना संस्कार छोड़े, नष्ट होते रहें तो हम आगे कैसे बढ़ेंगे ? हम एक दीवार बनाना चाहते हैं। पहली ईंट रखने के बाद जब हम दूसरी ईंट रखने चलें तब तक यदि पहली ईंट खिसक जाय और यह क्रम बराबर जारी रहे तो क्या दीवार कभी बन सकती है ? क्या हम बराबर एक ही स्थिति में पड़े रहकर बिना आगे बढ़े समय और शक्ति का अपव्यय नहीं करते रहेंगे ? ठीक यही बात मानसिक विकास पर भी चरितार्थ होती है। यदि हमारे अनुभव बिना संस्कार छोड़े नष्ट होते रहें तो हम आगे कैसे बढ़ेंगे। फिसल कर लुढ़क कर, गिर कर बच्चा चलना सीखता है। पहला अनुभव अधिक प्रभाव नहीं डालता पर दूसरे अनुभव को अधिक सफल बनाता है। यह सच है कि उन संस्कारों के पड़ने का अनुभव किसी व्यक्ति को नहीं रहता। जैसे उदाहरण के लिये मान लीजिये कि मैंने अक्षर सीखना प्रारम्भ किया और पहली बार लिखा तो पहली बार जो संस्कार पड़ा वह चार पांच बार उस संस्कार के पड़ने पर दृढ़ हो जायगा। शायद आप इसे स्मृति समझें या स्मृति नाम दें पर स्मृति में और इस में काफी भेद है। अचेतन स्मृति संचय कहलाती है एवं चेतन संचय स्मृति। संचय शक्ति तो प्राणिमात्र में रहती है पर स्मृति उच्चवर्ग के जीवधारियों में विशेषतः मनुष्यों में ही पाई जाती है। विचार कल्पना आदि जितनी बौद्धिक क्रियायें मानव वैशिष्ट्य की बोधक हैं उन सब का आधार स्मृति ही है। हम जो अनुपस्थित व्यक्तियों के विषय

में बातें किया करते हैं। अपने प्रिय व्यक्तियों का विरह या मृत्यु हमें सताती है, अतीत घटनाओं की आलोचना करते हैं एवं भविष्य की कल्पना का चित्र निर्मित किया करते हैं वह सब स्मृति के ही सहारे। मनुष्य के मानसिक जीवन में स्मृति का बड़ा ही गौरवपूर्ण स्थान है। पर इस स्मृति का आधार यह संचय शक्ति ही है। कुछ भी सीखना, मन का किसी रूप में विकसित होना इसी मूल शक्ति का परिणाम है।

संप्रयोजनता—मन की दूसरी विशेषता है मन का समस्त व्यवहार प्रयोजन पूर्ण होता है, उसका कुछ न कुछ उद्देश्य होता है। बिजली प्रकाश के लिये जलती है, कलम से पुस्तक लिखी जाती है, पर बिजली और कलम का अपना उद्देश्य नहीं होता वह चेतन मनुष्य के उद्देश्य का साधन रहती है। कलम स्वयं कुछ नहीं कर सकती। मनुष्य चाहे तो उस से चिट्ठी लिख सकता है, गलतो अथवा गुस्से में किसी की आंख फोड़ी जा सकती है, बच्चे की टूटी गाड़ी की धुरी बनायी जा सकती है। अर्थात् प्रयोग कर्त्ता की इच्छा पर ही कार्य निर्भर है।

परन्तु चेतन व्यापार सप्रयोजन होते हैं। इस प्रयोजन का पता प्राणी को कभी होता है और कभी नहीं। पाचन क्रिया का हमें पता नहीं चलता, मन्थर ज्वर के ताप से बिगड़ा स्वर फिर ठीक-ठीक काम करने लगता है। हमारा कटा हाथ अपने आप जुड़ जाता है। इसी प्रकार मनुष्य जितने भी कार्य करता है उनका अच्छा या बुरा कोई न कोई प्रयोजन होता है। जीव-धारियों के प्रत्येक काम में हमें संप्रयोजनता दिखाई देती है। इसे अंग्रेजो में हम (Horme) कहते हैं। इसे हम जीवनेच्छा, प्रेरणा, अज्ञात इच्छा आदि नाम दे सकते हैं। उदाहरण के लिये रोटी खाना प्रयोजन है तो हम गेहूँ बोने से ले कर रोटी

खाने तक जितने व्यापार करेंगे वह व्यापार प्रयोजनपूर्ण होंगे।

'संबद्धता'—सम्बद्धता नाम की तीसरी मन की मूल शक्ति है। अपने अनुभव से उत्पन्न समस्त संस्कारों को सम्बद्ध एवं व्यवस्थित करने की शक्ति को मन की सम्बद्धता की शक्ति कहते हैं। जैसे एक मनुष्य एक बार बड़ा सुन्दर गानागा रहा था और उसके बाद दूसरे वर्ष वालीबाल खेल रहा था। वाली-बाल खेल देखने के बाद हम सिनेमा गये, मिठाई खाई पर उस व्यक्ति का सम्बन्ध इन चीजों से न जुड़कर पहले वाले गाने से ही जुड़ता है अर्थात् हमारे संस्कार एक विशेष प्रकार से सम्बन्धित होते रहते हैं। चिट्ठियों के समान मन के जितने संस्कार हैं उन्हें नेमे नाम की शक्ति जहां संचित करती है वैसे ही यह सम्बद्धता शक्ति एक शहर की सब चिट्ठियों के समान सब को एक जगह करती चली जाती है। इस प्रकार मन की संचय, संप्रयोजनता तथा सम्बद्धता का तीनों शक्तियों के सम्मि-लित प्रभाव से ही प्राणियों का विकास होता है।

इस प्रकार मन के दो पहलू हम कह सकते हैं। एक तो मानसिक क्रिया या अनुभव और दूसरा मानसिक गठन, अथवा आकार। अनुभव के तीन पहलू होते हैं। ज्ञानात्मक, रागात्मक तथा क्रियात्मक। सुख, दुःख, पीड़ा, क्रोध आदि के भावों की संवेदना रागात्मक अनुभव है, किसी भी प्रकार का केवल मात्र ज्ञान ज्ञानात्मक अनुभव है तथा परिस्थिति को बदलने की इच्छा अथवा उसे यथास्थित बनाए रखने की इच्छा क्रियात्मक अनुभव है। मूल प्रवृत्तियाँ, सामान्य स्वाभाविक परिस्थितियाँ, आदतें, स्थायीभाव तथा अन्य समस्त संस्कार हमारे मन का गठन अथवा आकार कहलाते हैं।

—❀❀—

ज्योतियों की ज्योति

यज्जाग्रतो दूर मुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषांज्योतिरे कन्तन्मे मनः शिवसंल्पमस्तु॥

(यत्) जो (जाग्रतः) जागृत अवस्था में (दूरं उदैति) दूर दूर भागता है और (सुप्तस्य) सुप्त अवस्था में भी (तथा+एव) उसी प्रकार ही (एति) जाता है। (तत्) वह (दूरं गमं) दूर दूर पहुँचने वाला (ज्योतिषां ज्योतिः) ज्योतियों का भी ज्योति रूप=प्रधान इन्द्रिय (एकं) एकमात्र (दैव) दिव्य शक्ति सम्पन्न (मे मनः) मेरा मन (शिव संकल्पमस्तु) शुभ संकल्पों वाला (अस्तु) हो।

हमारे शरीर के सब कार्यों का संचालक मन है। यह मन जागते हुए, सोते हुए, सभी समयों पर हमारे कार्यों का संचालन करता है। वास्तव में आत्मा का स्थूल स्वरूप मन और मनका स्थूल स्वरूप और बाह्य स्वरूप शरीर है। यह मन शरीर पर आश्रित है। ऋग्वेद में कहा गया है :—

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्रः।
केषीदेकते यूधये भूयसश्चित्त॥

अर्थात्—"भगवान् इन्द्र की इच्छा करने वाले ! यदि तू समर्थ होकर मन को स्थिर करे, तो तू अकेला ही नाना प्रकार के विघ्नों और कठिनाइयों को युद्ध में पराङ्मुख कर सकता है।"

किन्तु मन को स्थिर करना यह तो साधारण बात नहीं। मन अत्यन्त शक्तिशाली वस्तु है। श्री शंकराचार्य महाराज ने मन के विषय में कहा था :—

मनो नाम महा व्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु ।
चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः ॥

यह मन बड़ा भयंकर व्याघ्र विषयों के वन में विचरण करता रहता है। अतः मोक्ष की कामना करने वालों को वहां नहीं जाना चाहिये। इस मन को वश में करना साधारण बात नहीं। बड़ा चंचल है यह। गुरु वशिष्ठ ने राम से कहा था :—

नेह चंचलता हीनं मनः क्वचन दृश्यते ।
चंचलत्वं मनो धर्मो वह्नेः धर्मो यथोष्णता ॥

अर्थात्–हे राम ! इस संसार में चंचलता से शून्य मन तो कहीं भी नहीं देख पड़ता है। चंचलता मनका ऐसा धर्म है जैसे अग्नि का धर्म उष्णत्व है। वशिष्ठ ने तो यहां तक कहा है कि समुद्र को पी डालने, सुमेर पर्वत को उखाड़ कर फेंक देने और दहकते हुए अंगारों को सटक लेने से भी इस चित्त का वश में करना अधिक दुष्कर कार्य है।

इस मन की तेजी का क्या पूछना ? यह संसार के तेज से तेज चलने वाले पदार्थों से भी अधिक गति वाला है और यह इस लोक, पर लोक, देश विदेश, और बहुत दूर दूर तक यात्रायें करता है। तेज से तेज पदार्थों को सूर्य तक पहुंचने में बहुत देर लगती है पर मन को वहां पहुंचने में जरा भी समय

नहीं लगता। यह मन राजाओं के दरबार में, पहाड़ों को अगम्य चोटियां, समुद्र के अगाध अन्तस्तल, नदी की दुर्गम धाराओं, असूर्यम्पश्या राजदाराओं की गुप्त कोठियों, वेद की गहन ऋचाओं, दर्शनों की सूक्ष्म पंक्तियों, दूर दूर के देशों, स्थानों और कल्पना द्वारा प्रसूत असंख्य लोक लोकान्तरों में गति करता हुआ पहुंच जाता है। और कोई भी विश्व का पदार्थ इतनी तेजी से और इतनी दूर तक नहीं जा सकता। विद्युत की चंचलता प्रसिद्ध है परन्तु उसकी चमक देखी जा सकती है परन्तु मन की क्रिया तो इतनी तीव्र होती है कि इसका समझना अत्यन्त कठिन है। यह देखिये अभी आप एकान्त में बैठ कर संध्या कर रहे हैं, ईश्वर भक्ति की बात चल रही हैं। गुरु जी दर्शन का पाठ पढ़ा रहे हैं। अध्यापक महानुभाव गणित की शिक्षा दे रहे हैं। पर मन राम तो दूर निकल गए हैं। वह तो हलवाई की दुकान पर मीठी मीठी गुलाब जामुनों का स्वाद ले रहे हैं। वह सिनेमा की अभिनेत्रियों की रूप सुधा का पान कर रहे हैं। वे दूसरे के धन को हड़पने की योजनायें बना रहे हैं और उन्हें ईश्वर भक्ति के स्थान पर विषयासक्ति की बातें याद आ रही हैं। भला कहां गई वह भक्ति ?

यह तो मन का जागृत समय का रूप है। वास्तव में मन के दो हिस्से हैं। एक बाहरी और एक भीतरी। बाहरी हिस्सा वह है जिसे हम जानते हैं, जिससे हम परिचित हैं। वह जागृत अवस्था का मन है। इसे हम बहिर्मन भी कह सकते हैं। बहिर्मन के स्वरूप के विषय में हडसन साहब का कहना है "बाहरी संसार का ज्ञान प्राप्त करने का कार्य बहिर्मन किया करता है। भिन्न भिन्न पदार्थों के स्वरूप जानने के लिये उक्त

मन सभी ज्ञानेन्द्रियों का उपभोग करता है। मनुष्य की नाना प्रकार की आवश्यकताओं के कारण इस मन की वृद्धि हुई है और हो रही है। आपने चारों ओर की परिस्थिति अपने जीवन के अनुकूल बना लेने के लिए जीव अथवा मनुष्य लगातार प्रयत्न कर रहा है। इस प्रयत्न में यह मन उसका मार्गदर्शक होता है। इस मन का महत्त्वपूर्ण धर्म है विवेक शक्ति।"

वहिर्मन के जितने भी कार्य होंगे उनमें व्यक्ति की दृष्टि से तर्क या हेतु अवश्य होगा। हम वहिर्मन के महत्त्व का निम्न रूप में उल्लेख कर सकते हैं :—

(१) मनुष्य के विकास का कारण वहिर्मन है यह प्राणियों को समय और असमय का विचार करने की प्रेरणा देता है। जैसे एक टापू में जहां मनुष्य नहीं रहते थे जब सब से पूर्व मनुष्य बन्दूक लेकर पहुंचा तो पक्षी डरे नहीं। पर जब उसने पक्षियों को बन्दूक से मारा तो मनुष्य, उसकी बन्दूक और बंदूक की मार को देखकर डरना प्रारम्भ कर दिया।

(२) यह बहिर्मन या जागृतावस्था का मन नई परिस्थिति से मुकाबला करने की शक्ति उत्पन्न करता है।

(३) यह बहुत दूर दूर तक की यात्रायें करता है। अनेक स्थानों पर जाता है।

(४) अन्तर्मन को नाना प्रकार की सूचनायें और प्रेरणायें देता है।

(५) यह अन्तर्मन को शिक्षा देकर उसमें नई प्रवृतियां उत्पन्न करने का कार्य किया करता है।

चेतन मन तो दूर दूर जाता है ही। सोये हुये मनुष्य का मन भी उसी प्रकार दूर २ की यात्रायें करता है। जिस समय

मनुष्य सोया रहता है उस समय उसका चेतन मन सोता है परन्तु उसका अचेतन मन जागता रहता है । स्वप्न इसी मन की सृष्टि है। जागते समय चेतन मन की शक्ति चेतना के कार्य में खर्च होती रहती है पर सोते समय वह अचेतन मन में ही संचित रहती है। अतएव जितना काम अचेतन मन सोते समय करता रहता है उतना जागृतावस्था में नहीं करता। चेतना का क्रियाओं को बन्द कर देने से अचेतन मन का कार्य प्रबल हो जाता है। और उस समय भी यह मन दूर २ की यात्रायें प्रारम्भ कर देता है। कभी कभी जब मनुष्य अपनी प्रबल इच्छा को अपनी जागृतावस्था में तृप्त नहीं कर पाता तो वह उसे अपनी स्वप्नास्था में गुप्तरूप से तृप्त करता है। प्रबल उत्तेजना होने पर ये स्वप्न सक्रिय हो जाते हैं। शेक्सपियर के मेकबेथ नामक नाटक में लेडी मेकबेथ की कहानी अंग्रेजी जानने वाली जनता में प्रसिद्ध है। लेडी मेकबेथ अपनी सुप्तावस्था में उठकर हाथ धोती थी। वह अपने हाथों को रक्त रंजित देखती थी। वह अपनी दासियों से पानी साबुन मंगवाती और हाथ साफ करती थी। फिर तिस पर भी उसे उनमें खून लगा दिखाई देता था। इस महिला ने अपने घर पर आये अतिथि राजा उन्कन को किसी अपराध में राज्य के लोभ वश अपने पति के द्वारा मरवा दिया था। जब से उसने राजा का खून किया तब से उसे इस प्रकार के स्वप्न होते रहते थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सोये हुए आदमी का मन भी बहुत दूर २ की यात्रायें करता है।

अब इस मंत्र में अगला पद है कि यह मन ज्योतियों की ज्योति है। अर्थात् यह बाहरी प्रकाश तो केवल इन्द्रियों को ही प्रकाशित करता है यदि मन न हो तो यह बाहरी प्रकाश किसी

चीज को प्रकाशित नहीं कर सकता। हमारी त्वचा जो स्पर्श, दुःख सुख जलन और कटाव को अनुभव करती है यदि हमारा मन और कहीं गया होआ हो तो उस समय इन सबका हमें अनुभव नहीं होता। हाकी खेलते हुए पैर में लगी चोट से बहते हुए खून का ज्ञान हमें तब होता है जब हमारी नजर घंटों बाद उस पर पड़ती है। इसी प्रकार कई बार कोई आदमी जोर जोर से आवाज देकर हमें बुला रहा होता है पर हमारी ज्ञानेन्द्रिय उसे नहीं सुन पाती क्योंकि हमारा मन किसी गंभीर चिन्तन में रत रहता है। इसी प्रकार आंखों के सामने से बड़ी बड़ी सेनायें गुजर जाती हैं पर सामने बैठे व्यक्ति को उनका कुछ पता ही नहीं चलता। हिन्दू विश्व विद्यालय के स्वर्गीय प्रोफेसर श्री गणेश प्रसाद जिस समय इङ्गलैण्ड में गणित का अध्ययन करते थे उस समय उनके जीवन में ऐसी अनेक घटनायें घटित हुईं। उनके सामने एक बार राज्याभिषेक जैसे शोर का उत्सव संपन्न हो गया पर उन्हें उसका ज्ञान भी नहीं हुआ। इसका कारण यही है कि यदि हमारा किसी काम में मन न लगा तो उस विषय का इन्द्रिय के साथ सम्पर्क होने पर भी हमें ज्ञान नहीं हो सकता। बाहर का केवल रूप का प्रकाश ही नहीं किन्तु शब्द, स्पर्श, गन्ध आदि का प्रकाश भी हमें जिन बाह्य करणों, साधनों या इन्द्रियों द्वारा हो रहा है उन सब इन्द्रिय रूप ज्योतियों का भी ज्योति यह मन है। यह अन्दर का कारण है। सब के सब ज्ञान के साधन इस अन्तर ज्योति में—इस मन में एक हो जाते हैं। यह मन महाशक्ति है, दिव्य ज्योतिर्मय है।

हमारा जिस कार्य में मन नहीं लगता वह सरल कार्य होते हुए भी हमें अच्छा नहीं लगता। हमें वह वस्तु अच्छी लगती

है जिस पर हमारा ध्यान केन्द्रित रहता है। यह ध्यान का केन्द्रीकरण यदि शिक्षा क्षेत्र में प्रयोग में लाया जाय तो हम पढ़ने में कमजोर व्यक्तियों को अधिक शिक्षित बना सकते हैं कक्षा में प्रायः देखा जाता है कि जो विद्यार्थी जोड़, घटा, गुणा, भाग में कठिनाई अनुभव करते हैं वे ही अमरनाथ की क्रिकेट के खेल की प्रारम्भ से की गई अब तक की रनों का पूर्ण योग सरलता से कर लेते हैं। ध्यान को केन्द्रित करने की जो शक्ति इसमें रहती है वह अवधान कही जाती है। यही कारण है कि शिक्षा में उस समय जब बार २ चेतावनी देते रहने पर भी बालक का ध्यान अध्यापक के विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान पर नहीं जाता है पर सामने ही होने वाले भालू के नाच, सिनेमा के विज्ञापन के भोंपें, चनाजोर गर्म की मधुरध्वनि को सुनना पसन्द कर रहा होता है। अध्यापक इसी कारण उसके कान मलकर डांट डपटकर, दण्ड देकर उसके कर्तव्य की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करता है। इसका शिक्षा में कितना उपयोग किया जा सकता है यह शिक्षा-शास्त्रियों से पूछिये।

देखिये, मन जिस कार्य में लगता है उसके प्रति हम कितना आकृष्ट होते हैं। कुत्ता बिल्ली वृक्ष पर बैठी चिड़िया को देखते हैं मनमोहक फूल को नहीं इसी मन की ज्योति का फल था कि अर्जुन को मछली की आंख ही दिखलाई दी दूसरी वस्तुयें नहीं। छपी पुस्तक में हमें अपना नाम बड़ी जल्दी दिखाई देता है। सोता हुआ व्यक्ति अपना नाम सुनकर जाग जाता है, यद्यपि उसके चारों ओर मचने वाला शोर उसकी निद्रा में जरा भी बाधक नहीं होता, मां बीमार बच्चे की हलकी आवाज से जाग जाती है, मोटर का ड्राइवर इंजिन की हलकी भर्राई आवाज से आकृष्ट हो जाता है, कुशल डाक्टर रोगी के शरीर पर सूक्ष्म

से सूक्ष्म चिह्नों को देख लेता है, कुशल गायक गान के हलके से आरोह और अवरोह को पहचान लेता है। कहा जाता है कि एक कृपण व्यक्ति यदि गहरी नींद में सो रहा हो तो उसे जगाने का सबसे सरल तरीका उसके हाथ में रुपया रख देना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मन हमारे कार्यों का प्रकाशक है। जिनसे इसका सम्पर्क होता वे कार्य सरल हो जाते हैं। इसी मन के द्वारा वेद की कठिन ऋचाओं का प्रकाश हुआ, इसी मन के द्वारा वाल्मीकि, वेद व्यास, कालिदास आदि ने कविता रची, इसी मनकी ज्योति ने गौतम, कपिल, कणाद आदि दार्शनिक उत्पन्न किये, इसी मन की ज्योति ने मृत्यु के भय से रामप्रसाद बिस्मिल राजगुरु भगतसिंह, सुखदेव को दूर किया, इसी ज्योति ने दयानन्द स्वामी को सत्यार्थ प्रकाश करने की प्रेरणा दी, इसी मन की ज्योति ने स्वामी श्रद्धानन्द को मुंशीराम से श्रद्धानन्द बनाया, इसी की ज्योति ने नास्तिक गुरुदत्त को आस्तिक बनाया। इसके प्रकाश का, इसकी ज्योति का कहां तक उल्लेख करें यह तो ज्योतियों की ज्योति है। इसके बिना हमारे शरीर की कोई इन्द्रिय कार्य नहीं कर सकती। आइए इस ज्योति को उज्ज्वल करें।

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु

हमारे हृदय में जो आशा भरी तरंगें उठा करती हैं, हमारी आत्मा में जिन महात्वाकांक्षाओं का जन्म होता है, हमारे मन में जिन उत्तम भावनाओं का उदय होता रहता है, क्या वे खरगोश के सींग के समान असत्य हैं, बेजड़ हैं, व्यर्थ हैं, फिजूल हैं ? नहीं, नहीं, वे जीवनप्रद हैं, सत्य हैं, मजबूत जड़ वाली हैं, प्रबल हैं, प्रभावोत्पादक हैं, हमारी शक्ति की सूचक

और हमारे उद्देश्य की उच्चता की मापक हैं, हमारी कार्य शक्ति के परिणाम के द्योतक हैं। मन, वचन और काया को एक करके जिस आदर्श की सृष्टि होगी वह अवश्य ही हमारे सामने सत्य के रूप में प्रकट होगा। यही शिव संकल्प है।

हमारे शरीर में इन्द्रियों और आत्मा से भिन्न एक वस्तु मन है। शारीरिक, ऐन्द्रियक और मानसिक सुख मन की स्वच्छता, स्वस्थता, सत्य संकल्प पर निर्भर हैं। यह मन ही शरीर रूपी यंत्र का मूल पुर्जा है। इसके ठीक रहने से सब अंग ठीक रहते हैं और बिगड़ने से बिगड़ते हैं। अतः प्राचीन-काल के विद्वान् और आधुनिक काल के मनोवैज्ञानिक मन को शिवसंकल्पों वाला बनाने का प्रयत्न करते हैं। संकल्प का मतलब है प्रबल तथा साधिकार इच्छा का होना। और यदि हम इस संकल्प का पुनः पुनः आवर्तन करें तो मनो-वैज्ञानिक भाषा में यह आवेश कहलाता है। मन की सर्व प्रथम गति संकल्प है अपितु संकल्प ही मन का सार है और उसके विकास का कारण भी। वेद में संकल्प और कामना को आन्तरिक जीवन को मूर्ति और बाह्यजीवन की मूर्ति माना गया है। अथर्ववेद १९। ५२। १ में एक मन्त्र में कहा है—

कामस्तदग्र समवर्तत मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्।
स काम कामेन वृहता सयोनी रायस्पोषं यजमानाय धेहि॥

इस मन्त्र का भाव यह है कि मनुष्य में काम या संकल्प सब से पूर्व उत्पन्न होता है। यह संकल्प मन का प्रथम सार है। वह संकल्प पुनः पुनः उठे हुए संकल्प के साथ एक क्षेत्र अर्थात् मन में एकत्र होकर यजमान स्वरूप आत्मा के लिए ऐश्वर्य=धन, स्वास्थ्य और शक्ति तथा बल देता है।

इस मन के कार्यों को प्रकट करने का ढंग वही होता है जो बिजली के प्रकट होने का। अर्थात् धन तथा ऋण दो प्रकार की बिजलियां होती हैं। धन और धन तथा ऋण और ऋण विद्युतें आपस में नहीं मिलतीं। ऋण और धन विद्युत के मिलने से कार्य शक्ति प्रज्वलित होती है। इसी प्रकार मन में भी दो तरंगें होती हैं उन्हें बोध और प्रतिबोध नाम से कहा जाता है। संकल्प शब्द का तात्पर्य है कि इसके द्वारा हम अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति करते हैं और विकल्प द्वारा अनभीष्ट निवारण। संकल्प और विकल्प एक दूसरे के पूरक हैं। यदि विकल्प नहीं होता तो संकल्प में आने वाली कठिनाइयों का हमें ज्ञान न होता। उदाहरण के लिये मैं निश्चय या संकल्प करता हूं कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा परन्तु इस संकल्प में यह बाधा हो सकती है कि चोर मेरी छाती के सामने पिस्तौल लेकर खड़ा हो जाय और मुझ से मेरा धन पूछे इस समय संकल्पानुसार तो मुझे झूठ नहीं बोलना चाहिये पर विकल्प उठकर अनभीष्ट को निवारण करने का मार्ग बतलायेगा। इस प्रकार संकल्प का अर्थ हुआ प्रबल तथा साधिकार इच्छा। और शिव संकल्प का अर्थ हुआ शुभ प्रबल तथा साधिकार इच्छा।

संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाकर मनुष्य संसार के महान् कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकता है। वास्तव में मन ही सब व्यक्तियों को कार्य में लगाने वाला होता है। हम समझते हैं कि हम शरीर द्वारा कार्य करते हैं परन्तु सब अंगों के ठीक रहने पर भी यदि मन वहां न हुआ तो कार्य में सफलता संदिग्ध ही नहीं असम्भव हो जायेगी।

दुनियाँ उस मनुष्य के लिए खुद रास्ता दे देती है जो शक्तिशाली, आत्मविश्वासी और दृढ़ाग्रही है, जो इस बात को

जानता है कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं, ऐसी काई विपत्ति नहीं जो मेरी शक्ति का रास्ता रोक सके। कायर मनुष्य इनसे डर सकता है, रास्ते में इन्हें पाकर पथभ्रष्ट हो सकता है पर मैं तो इन पर पूरी-पूरी विजय पा सकता हूं। यह शिव संकल्प हमारे सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण कर सकता है।

लोग व्यसनों से भयभीत रहते हैं। कोई कहता है कि बीड़ी की आदत पड़ गई है, किसी को शराब का व्यसन है, किसी को वेश्याओं के पास जाने की लत है, और कोई अनावश्यक रूप में दूसरों की वस्तुओं का अपहरण करने में आनन्द लेता है। यदि कोई उसे समझाता है तो वह उत्तर देता है क्या करें बीड़ी पीना छोड़ना तो चाहते हैं पर शास्त्री जी! यह छूटती ही नहीं। अरे, मूर्ख क्या बीड़ी इतनी शक्तिशालिनी हो गई है कि उसने तुझे पकड़ रखा है, वेश्यागमन क्या तू रोक नहीं सकता है, ब्लैक मार्केटिंग, चोर बाजारी, रिश्वत और दूसरे अनाचार क्या तुझ से अधिक शक्तिशाली हैं, क्या इन्होंने तुझे पकड़ा है ? ये नहीं पकड़ सकते ? जरा जोर से डाट तो दो। ये जब आयें तो कहो—

परो ऽ पेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि ।
परे हि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः ॥
॥ अथर्व० ६ । ४५ । १ ॥

अर्थात् ओ मन के पाप ! तू परे चला जा निकल, दूर हट। तू तो गन्दी और निन्दित बातों को पसन्द करता है। दूर भाग, मैं तुझे नहीं चाहता हूं। तू जंगलों, वृक्षों में भाग और तेरे निकलने के बाद मैं अपने मन में स्त्री पुत्रादि और गौ आदि प्राणियों को रख लूंगा।

Let us fight in every field
Ever win and never yield

अर्थात्—'विश्वाः पृतना जयेम' सम्पूर्ण विश्व को हम विजय करें ; अपने मन में विजय की महत्त्वाकांक्षायें रखें। किसी बुराई के सामने नतमस्तक न हों। यह दृढ़ संकल्प हमें संसार के सभी कार्यों में सफलता प्रदान करेगा। याद रखिये, विजय जीवन है और पराजय मृत्यु। संकल्प से विजय प्राप्त होती है।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनञ्जयो हिरण्यजित्॥

मेरे दांयें हाथ में कर्तव्य हो और बाँयें हाथ में विजय हो। मैं इन्द्रिय वृत्तियों, शक्तियों और राष्ट्रों का विजेता बनूं। मैं धन, ऐश्वर्य, सम्पत्ति, यज्ञ, शोभा, सब कुछ प्राप्त कर लूं।

संकल्प शक्ति को बढ़ाने के लिए, निराशा कमजोरी और हीनता की भावना को मिटाने के लिए वेद में उत्साहमयी प्रार्थनायें की गई हैं। यजुर्वेद में आया है—

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयिधेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि॥

हे परमात्मन्! तू तेजस्वरूप है, मुझमें तेज धारण करा, हे परमात्मन् तू पराक्रम रूप है मुझमें पराक्रम धारण करा, हे परमात्मन्! तू बलस्वरूप है मुझे बल दे, ओज दे, साहस दे, शक्ति दे, क्रोध दे और सहिष्णुता दे।

संकल्प शक्ति का संचार सम्मोहन या वशीकरण द्वारा दूसरों में भी किया जा सकता है। असत्यवादी को स्वाभाविक निद्रा या अर्ध निद्रा में ले जाकर उसे संकल्प शक्ति द्वारा इससे निवृत्त किया जा सकता है। उसे आदेश दीजिए—

तुम्हें झूठ बोलने की आदत है, वह बुरी है, बहुत बुरी। झूठ बोलना पाप है। महानाश का कारण है। तुम दूसरों की

दृष्टि में गिर जाओगे अतः इस अशिव प्रवृत्ति को दूर करो। शिव संकल्प रूप सत्य को धारण करो। इसको दूर करना बिल्कुल भी कठिन नहीं। करके तो देखो। सफलता तुम्हें मिलेगी।

संकल्प की दृष्टि के प्रयोगों का हमें स्वयं भी अनुभव है। हमने इस प्रयोग द्वारा मां बाप के पैसे चुराने वाले जूआ और दूसरे व्यसनों में फंसे और अध्ययन की अरुचि रखने वाले व्यक्तियों को स्वयं प्रयोगों द्वारा ठीक किया है। स्वप्नदोष, हीनता की भावना और हिस्टीरिया के रोगी इस शिवसंकल्प की भावना से नवजीवन प्राप्त कर सकते हैं अतः परमेश्वर से प्रार्थना की गई "तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु" वह मेरा मन शिव संकल्पों वाला हो।

आज हर्ष का है उद्रेक।
दूंगा नया जन्म भूतल को, अन्तरिक्ष को नभ के तल को।
स्थावर जंगम सब के बल को, बनें सृष्टियां नई अनेक॥
आज हर्ष का है उद्रेक।
सेना सजी आज मंगल है, यह उत्सव है प्रिय कल कल है।
मेरा शुभ संकल्प अचल है, होगा नूतन अभिनय एक॥
आज हर्ष का है उद्रेक।
दसों दिशायें बहनें बनकर, चढ़ीं भावना की चोटी पर।
विमल रसों से स्वर्ण कलशभर, करती हैं मेरा अभिषेक॥
आज हर्ष का है उद्रेक।

हमारा मन अपूर्व है

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

(येन) जिस मन से (अपसः) पुरुषार्थी (धीरा) धीर और (मनीषिणः) मनस्वी या मननशील पुरुष (यज्ञे) सत्कर्म और (विदथेषु) युद्धादि में भी (कर्माणि) इष्ट कर्मों को (कृण्वन्ति) करते हैं और (यत्) जो (अपूर्वम्) अपूर्व है और (प्रजानाम्) प्राणियों के (अन्त) भीतर (यक्षम्) मिला हुआ है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिव संकल्पमस्तु) शिवसंकल्पों वाला हो।

अरे मानव ! तू क्यों नैराश्यग्रस्त पड़ा है ? क्या तुझे पता नहीं कि तुझ में अपूर्व शक्ति संपन्न मन विद्यमान है ? यह मन ही है जो शिथिल, बिखरी पड़ी हुई, वस्तुओं को एकत्र करता है। हे जीव ! तू हारा हुआ क्यों पड़ा है ? तुझ में तो संसार की अनन्त शक्ति प्रवाहित हो रही है। तेरे मस्तिष्क में ज्ञान का सूर्य चमक रहा है। तेरे मन में अपूर्व शक्ति है। तू क्या नहीं कर सकता, उठ।

इस विश्व में दो प्रकार के कार्य हैं। सब प्रकार के कार्यों को हम बौद्धिक या यज्ञादि कार्य कह सकते हैं और दूसरे प्रकार के कार्यों को हम व्यावहारिक या युद्धादि के कार्यों का नाम दे सकते हैं। इन दोनों प्रकार के कार्यों को करने के लिये मनुष्य में एक विशेष प्रकार की भावना चाहिए और यह भावना मन के द्वारा आ सकती है। बिना मन की शक्ति के

कोई कार्य नहीं हो सकता है। मन यदि किसी कार्य को करने के लिये तत्पर हो जाय तो संसार की कोई शक्ति नहीं जो उसे रोक सके। इतिहास इस बात का साक्षी है।

अटक नदी चढ़ी हुई थी और भयंकर लहरें उठ रही थीं। महाराज रणजीत सिंह ने फौज से कहा "अटक के पार जाओ।" फौज ने उत्साह नहीं दिखाया। महाराज रणजीतसिंह ने अपने मन की शक्ति का प्रदर्शन किया। अपना घोड़ा दरिया में डाल दिया। कहा जाता है कि अटक सूख गई और सब पार निकल गये।

मैंने स्वामी दयानन्द को क्यों प्यार किया ? उन्हें घर बार छोड़कर वैराग्य लेने के कारण प्यार नहीं किया। उन्हें बाल ब्रह्मचारी बने रहने के कारण प्यार नहीं किया। मैंने इन्हें घने जंगलों में शेर और चीतों से भरे वन में अकेले भटकते रहने के कारण प्यार नहीं किया और न मैंने उन्हें उनके ज्ञान के कारण ही प्यार किया। मैंने गंगा के रेत पर बैठे हुए, अपने सद्यःमृत पुत्र को गङ्गा में बहाकर और निर्धनता-ग्रस्त होने के कारण कफन के कपड़े को धोकर लाती हुई और विलाप करती हुई भारतीय माता के विलापसे दुःखी मन हो आँसू बहाते दयानन्द को प्यार किया है। जिससे प्रेरित हो उस दिन से भारतीय जनता के लिये उन्होंने अपना उद्घोष घोषित किया "हे प्रभो सुख सब को, दुःख मुझ को" "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः" और सचमुच इस मानसिक भावना ने विश्व की सेवा का व्रत लिया और वह कार्य किया जो इतिहास का उज्ज्वल पृष्ठ होगा।

दुनिया में युद्ध के सामान जमा हैं। लाखों आदमी मरने मारने को तैयार हैं। गोलियाँ पानी की बून्दों की तरह मूसलाधार बरस रही हैं। यह देखो वीर को जोश आया। उसने

कहा 'हाल्ट'। तमाम फौज निस्तब्ध होकर जहां को तहां रुक गई। आल्प्स के पर्वतों पर चढ़ना फौज ने असम्भव समझा त्यों ही वीर ने कहा "आल्प्स है ही नहीं।" फौज को निश्चय हो गया कि आल्प्स नहीं हैं और सब पार हो गये।

जौन द यार्क नाम की एक सोलह वर्ष की फ्रांसीसी लड़की ने जो भेड़ चराने वाली थी अपनी तलवार से इङ्गलैण्ड की आगे बढ़ती हुई सेनाओं का बड़ी बहादुरी से सामना किया, फलतः फ्रांस पराजय से बच गया, उसकी स्वतन्त्रता कायम रही।

यदि आप मन की शक्ति का चमत्कार देखना चाहते हैं, यदि आप मन को अपूर्वता का बोध करना चाहते हैं, यदि आप मन के करिश्मों को समझना चाहते हैं और आप चाहते हैं देखना कि "मन एव मनुष्याणां कारणं वन्धमोक्षयोः" मन ही मनुष्यों का बन्ध और मोक्ष का कारण है तो देखिये कि पिछले दो महायुद्धों में अंग्रेज विजयी हुये। जर्मनी के भयंकर आक्रमणों से जब इङ्गलैण्ड की सेनायें त्रस्त हो जाती थीं तब भी अंग्रेज अपने समाचारपत्रों एवं पर्चों में अपनी विजय का ढिंढोरा पीटते थे। किसी कवि ने लिखा है :—

कदम जर्मन के बढ़ते हैं, फ़तह ब्रिटिश की होती है।

कारण यह था कि हार के समाचारों से कहीं जनता का मन टूट न जाय और परिणाम यह होता था कि हारती हुई भी ब्रिटिश सेनायें जीत जाती थीं। इतना ही नहीं जीवन संग्राम में भी मनुष्य मन के हारने पर हार जाता है। विद्यालयों में पढ़ने वाले वे बच्चे दब्बू और कमजोर हो जाते हैं जिनके मन पर यह बैठ जाता है कि पढ़ना हमें आ ही नहीं सकता। शिक्षकों के लिए यह ध्यान रखने की बात है।

क्या आपने नहीं सुनी उन मौलवी साहब की कहानी

जिनसे छुट्टी लेने की इच्छा से विद्यार्थियों ने स्वस्थ रहते हुये भी जिन्हें अस्वस्थ कर दिया था।

यज्ञ या परोपकार के लिए स्वामी दयानन्द का उल्लेख ऊपर किया गया है। देश में फैले हुए दुःख से दुःखी मानवों को अज्ञानग्रस्त लोगों को देखकर उनके अन्ध विश्वासों और रूढ़ियों को दूर करने लिए स्वामी दयानन्द के मन में भावना आई और अकेले होते हुए भी स्त्रियों, अछूतों, दीनों, दुःखियों और अज्ञानियों के उद्धार के लिए निकल पड़े और भटकों को उनका मार्ग बता कर ही दम लिया।

महात्मा गांधी ने मानसिक शक्ति के बल से अफ्रीका के पीड़ित भारतीयों का उद्धार किया।

तिलक महाराज जी ने इसी मन के बल से भारतीयता का सम्मान सिखाया। राजनीति को अवकाश के क्षणों और भाषणों से निकाल कर सक्रिय स्वतन्त्रता के संग्राम की ओर मोड़ा। उन्होंने अनेक शारीरिक यातनायें सहीं तथा अनेक बार जेल गए।

वीर सावरकर ने अपनी मानसिक शक्ति को यहां तक बढ़ा लिया कि समुद्र की उत्तङ्ग तरङ्गें भी भारतीय नागरिकों को स्वतन्त्र करने की भावना का दमन न कर सकीं। क्योंकि उन्होंने यह देख लिया था कि परतन्त्रता भारतीय नागरिकों के दुःखों का मूल कारण है। ये भूखे, नंगे, अस्वस्थ भारतीय तभी दुःखों से छुटकारा पायेंगे जब वे स्वतन्त्र होंगे। अतः वीर सावरकर मन की शक्ति से जल जहाज के शौचालय से समुद्र में कूद गये। अंग्रेजों की भरी सभा में निडरता के साथ खड़े होकर उन्होंने भारतीय स्वतन्त्रता का समर्थन किया और आजन्म कारावास सहा। काले पानी में रहे।

स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन सेवा का जीवन था। गुरुकुल कांगड़ी का एक विद्यार्थी टायफाइड से पीड़ित था। दूसरे विद्यार्थी बारी-बारी से रात को उसकी सेवा को आते थे। पुत्र के अस्वस्थ होने पर माता पिता की जो अवस्था होती है वही स्वामी श्रद्धानन्द की थी। भयंकर अर्ध निशीथ में वे उसे देखने को कई बार आते थे। एक बार किसी को वहां न देख कर और विद्यार्थी को वमन करते पाकर चिलमची को भरा हुआ देख कर उन्होंने उसका वमन अञ्जलि में लिया और भंगी के साथ आते हुए ड्यूटी के विद्यार्थी की बतलाया कि सच्ची सेवा जब मन में आती है तब भरी हुई चिलमची साफ करने के लिए दूसरों को नहीं बुलाया जाता। उस सेवक का मन घृणा, अपवित्रता, मान की भावना से दूर हो अपने कार्य में तत्पर हो जाता है। यही तो मन का यज्ञों में तत्पर होना है।

यह मन केवल मनुष्यों में ही नहीं प्राणियों में, समस्त जगत् में विद्यमान है। पशु, पक्षियों के मानसिक भावों का भी अनुभव किया जा सकता है। कभी कभी मनुष्य उन्हें अपने से भिन्न मानता है। वह समझता है कि पशु पक्षी बोल नहीं सकते अतः उन्हें कष्ट नहीं होता, यह बात ठीक नहीं। परिणाम यह होता है कि बड़े बड़े मानवतावादी मछली, मांस, बकरे और अण्डे खाना नैतिक धर्म समझने लग जाते हैं। जब बिल्ला बिल्ली के नर बच्चों को मार डालता है तो क्या कई दिन तक घर में आकर रोने वाली विलाप करने वाली बिल्ली को आपने नहीं देखा ? क्या मरी हुई सन्तान को अपने पेट से चिपकाने वाली बन्दरी का मानसिक दुःख आपको नहीं मालूम पड़ता ? क्या वेद में आये 'वत्सो जातमिवाघ्न्या' उत्पन्न हुए बच्चे को गाय जिस प्रकार प्यार करती है वैसे एक दूसरे को प्यार करो, यह वैदिक नाद क्या गाय की मानसिक शक्ति का द्योतक नहीं?

अतः इस मंत्र में कहा गया है "यदपूर्व" यक्षमन्तःप्रजानाम्" अर्थात् यह अद्भुत मन केवल मनुष्यों में ही नहीं है अपितु सभी जीवित प्राणियों में विद्यमान है। यह मन चींटी में है, शेर में है, हाथी में है, मछली में है। इसलिए ही तो भारतीय संस्कृति कहती है गाय बैलों के साथ प्रेम करो। घोड़े और हाथियों से प्रेम करो। सांप और छछून्दर से प्रेम करो उनको कष्ट देकर उनका शाप मत लो। तुम्हारे लिए दिन रात सेवा करने वाले पशुओं का हाहाकार तुम्हारा कल्याण नहीं करेगा। गाय बछड़े, कुत्ते और बिल्लियां कितनी प्रेमल होती हैं। वे तुम्हारी आवाज सुनते ही रंभाने लगती हैं। तुम्हारा स्पर्श पाते ही नाचने लगती हैं। मानसिक के वियोग पर खाना पीना छोड़कर रोने वाले पशुओं को क्या आपने नहीं देखा ? सूर ने कृष्ण को यही तो सन्देशा भिजवाया था—कृष्ण ! तुम्हारे वियोग में गायें बहुत दुबली हो गई हैं, इन्हें एक बार आकर देख लो।

ऊधो, इतनी कहियो जाय,
अतिकृश गात भई वे तुम बिन परम दुखारी गाय,
जल समूह बरसत दोउ आंखें हुँकति लीन्हें ताऊं,
जहां जहां गो दोहन कीन्हों सूँघति सोई ठाऊं।

इसी प्रकार कौशल्या ने राम को घोड़ों की दशा बताते हुए सन्देश दिया है और कहा है :—

राघौ एक बार फिरि आवो।
ये वर वाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधाओ,

क्या जानवरों में मन के बिना ही इन भावनाओं का उदय होता है ? नहीं मनुष्यों की भांति अन्य प्राणियों में भी यह मन है। इसीलिए तो धर्म का लक्षण करते हुए कहा है :—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

अर्थात् धर्म का सर्वस्व यही है कि अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई कार्य दूसरों के प्रति कभी भी न करो।

इस मन्त्र का सार है हे कर्मवीर ! उठो। अपने मन की शक्ति को समझो। तुम्हारे लिए संसार का कार्यक्षेत्र खुला पड़ा है। तुम जिस भी कार्य को स्वीकार करोगे वह महत्त्वपूर्ण हो जायगा। तुम दीनों का उद्धार करने आये हो। तुम में महान् शक्ति निहित है, किन्तु पवन सुत को ज्ञान नहीं कि वह इस पारावार को लांघ सकता है। भारत भूमि रजोजात सन्तान ! उठो, जागो समस्त संसार तुम्हारे जागने और इस पुण्य भूमि से ज्योति प्राप्त करने की प्रतीक्षा में है। सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष तू अपने पर भरोसा कर और अपनी तपोभेदक, यज्ञरूप मानसिक शक्ति से संसार का अज्ञान दूर कर और कल्याण विस्तृत कर। मन अत्यन्त शक्तिशाली है। इसका उपयोग करो। तुम अकेले हो यह मत सोचो।

तुम एक अनल कण हो केवल,
छप्पर तक जा सकते उड़कर।
जीवन की ज्योति जगा सकते,
अम्बर में आग लगा सकते।
ज्वाला प्रचण्ड फैला सकती है,
छोटी सी चिनगारी भी।

मन के बिना कोई काम नहीं किया जा सकता

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

(यत्) जो मन (प्रज्ञानं) ज्ञान (चेतः) चिन्तन (उत) और (धृति) धैर्य से युक्त है (च) और (यत्) जो (प्रजासु) प्रजाओं के (अन्तः) अन्दर (अमृतम्) अमृत (ज्योतिः) ज्योति है और (यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (किंचन) कुछ (कर्म) काम (न) नहीं (क्रियते) किया जाता है (तन्मे मनः शिव-सङ्कल्पमस्तु) वह मेरा मन शिव सङ्कल्पों वाला हो।

सफलता न भविष्य के गर्भ में छिपी हुई है, न वह अगम्य है। वह आपके निकट है; आपकी पकड़ के भीतर है। बस उसे आपके लेने भर की देर है। सुअवसर आने वाला नहीं है, वह आ गया है। स्वर्ण और कहीं नहीं वह आपके हृदय में, मन में छिपी हुई वस्तु है।

मन सङ्कल्पों का केन्द्र है। संकल्प ही वह शक्ति है जिसके द्वारा मनुष्य इस विश्व में अनेक प्रकार के चामत्कारिक कार्य कर सकता है। संसार का प्रज्ञान=प्रकृष्ट ज्ञान प्राप्त करने का साधन यह मन है। विद्यालयों में प्राप्त की जाने वाली शिक्षा मन का विषय है। आज का मनोवैज्ञानिक इसके लिए अनेक

परीक्षण मन पर कर रहा है, प्राचीन मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोग करके ज्ञान का आधार मन को माना था।

आध्यात्मिक, भौतिक एवं साहित्यिक ज्ञान की प्राप्ति मन के बिना असंभव है। ज्ञान और कर्म दोनों मन के द्वारा ही हो सकते हैं। ज्ञान की प्राप्ति के लिए जब हम अपना मन किसी विशेष दिशा में लगाते हैं तो हमारा ध्यान सांसारिक विषयों से भी हट जाता है। योग के साधन विद्यमान रहते हैं परन्तु मनुष्य उनका भोग नहीं करता उसका मन ज्ञात में रमता है।

बङ्गाल के एक भट्टाचार्य महोदय की एक घटना विख्यात है। उन्होंने ज्ञान प्राप्त करने के बाद चारों वेदों के भाष्य का संकल्प किया। वे भाष्य में लग गये। धन, दौलत, सन्तान और युवावस्था के भोगों से उनका मन हट गया। घर में सन्तान तो आनी दूर की बात हो गई धन के बिना माता को कष्ट होने लगा। मां ने अपने अनुसार एक उपाय सोचा और उनकी सगाई कर दी। विवाह हुआ। पत्नी आई। युवावस्था थी। वेदों के भाष्य में, ज्ञान के संग्रह में लगे इस युवक को अपनी पत्नी की ओर ध्यान तक न गया और सौभाग्य से पत्नी भी इतनी योग्य निकली कि उनके वेद भाष्य के कार्य में उसने सहयोग दिया। ६२ वर्ष की अवस्था के बाद जब वेद भाष्य पूरा हुआ तो उन्होंने सुख की सांस ली। चांदनी रात थी। स्त्री पास में सो रही थी। वेद भाष्य हो चुका था। ज्ञान प्राप्ति के समय काम की जिस वासना का उनको अनुभव तक न हुआ था, चांदनी के समान सफेद, उज्ज्वल बालों वाली पत्नी को देख कर इस वृद्धावस्था में उन्हें काम ने प्रेरणा की। पर पत्नी ने उन्हें कहा, प्रियवर, भाष्य तो हो गया पर अभी वेद प्रचार बाकी है। आइए अब हम उस दिशा की ओर बढ़ें। और

सचमुच, उन्होंने वेद प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। दोनों दो दिशाओं में गए और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए उन्होंने अन्त में एक दिन एक ही स्थान पर अपने प्राणों का विसर्जन किया। यह घटना इस बात की द्योतक है कि ज्ञान प्राप्त करने के लिये मन का ज्ञान में लगाना—आवश्यक कार्य हो जाता है। इसी-लिए मन को ज्ञान का आधार कहा गया है।

पढ़ा हुआ ज्ञान व्यर्थ है। यदि इस ज्ञान पर हमने चिन्तन न किया, इसका मनन न किया और इसे कर्म के रूप में प्रयोग में न लिया तो यह ज्ञान कर्म के बिना लंगड़ा हो जायगा। इसलिए ज्ञान का उपयोग चिन्तन है। यह चिन्तन साहित्य का निर्माण करता है यह चिन्तन विज्ञान के आविष्कार करता है, यह चिन्तन नई नई कलाओं का निर्माता है, चित्रों का स्रष्टा है, भवनों का रचयिता है, मूर्तियों का अधिष्ठाता है। यह सब मन की चिन्तन शक्ति का ही परिणाम है कि वेदव्यास हुए, वाल्मीकि ने रामायण लिखी, गौतम, कपिल, कणाद ने दर्शनों का विस्तार किया। स्वामी दयानन्द ने अपने चिन्तन द्वारा सत्यार्थ का प्रकाश किया। सुकरात ने इसी मन की चिन्तन शक्ति की बदौलत अपने को भुला का सत्य का यूनान में उद्‌घाटन किया। सुकरात चिन्तन करते हुए भोजन आच्छादन और सब कुछ भूल जाता था। कहते हैं कि उनकी पत्नी बिना उसे भोजन कराये भोजन न करती थी। एक दिन की बात है चिन्तन में रत सुकरात को जब वह भोजन के लिए कहती कहती हार गई तो लाचार होकर उन पर बिगड़ने लगी। उसका भी जब उस चिन्तन को कागज पर रखते हुए सुकरात पर कोई प्रभाव न पड़ा तब उसने पानी से भरा सम्पूर्ण घड़ा उन पर उंडेल दिया। चिन्तनशील सुकरात हंसा और उसने

कहा "आज मुझे चिन्तन का एक नया फल मिला है। वह यह कि आज तक मैं सोचता था कि जो गर्जते हैं वे बरसते नहीं पर तुम इसका अपवाद हो। तुम गर्जती भी हो और बरसती भी। यह है चिन्तन शक्ति का फल।

धैर्य भी मन का ही गुण है। मृत्यु भयावनी होती है परन्तु यह कायरों को भयभीत करती है धैर्यशाली बहादुर मृत्यु से भयभीत नहीं होते। कबीर ने कहा है "मरने से ही पाया पूरन परमानन्द।" मन में धैर्य आ जाने पर ही 'वन्देमातरम्' का जप करते करते छोटे २ बच्चे हंस हंसकर कोड़े खा लेते थे। 'भारत माता की जय' बोलते बोलते शहीद फांसी के तख्ते पर चढ़ जाते थे। इसी मन के कारण स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के नाम पर लेखराम, राजपाल, स्वामी श्रद्धानन्द और न जाने कितने व्यक्तियों ने अपनी प्राणों की बलि दे दी। इसी मन के कारण 'महात्मा गांधी की जय' करते हुए स्त्रियां अपने सिर पर लाठो का वार सहन करने लगीं, इसी मन की शक्ति से 'इन्किलाब जिन्दाबाद' के नारे के साथ क्रान्तिकारी लोग गोलियों के सामने सीना तानकर खड़े हो जाते थे। धैर्य भी मन से ही हो सकता है। इसका विकास इस प्रकार होता है :—

संसार के अधिकांश मनुष्य साधारण जीवन यापन के कार्यों में संलग्न रहते हैं। भोजन उपार्जन करना, सन्तान का पालन करना, इन सब कामों के लिये धन संग्रह करना, धन संग्रह करने में बाधा डालने वालों से लड़ना तथा उसमें सहायता देने वालों से मेल करना आदि कार्य प्रत्येक व्यक्ति करता है। मनुष्य स्वभाव की यह विशेषता है कि वह सभी पदार्थों और क्रियाओं का मूल्य आंकता है और वह उस काम में अपने को लगाता है जिसे वह मूल्यवान् समझता है। यह मूल्यांकन अपने

बौद्धिक दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह बौद्धिक विचार ही उसकी विभिन्न क्रियाओं में एकता लाता है। जिस व्यक्ति का दार्शनिक विचार बौद्धिक दृष्टिकोण जितना ही गम्भीर और ठोस होगा वह अपने कार्यों में उतनी ही लगन और कार्य क्षमता प्रदर्शित करेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्धि ही कार्यों की जननी है। यह बुद्धि या विचार शक्ति कैसे उत्पन्न होती है इसको समझने के लिए हमें मन के पास पहुंचना पड़ेगा। मनोवैज्ञानिक मन में संचय, सप्रयोजनता और सम्बद्धता नाम की तीन शक्तियों का निवास मानते हैं। इनमें से संचय शक्ति के द्वारा हम अपने अनुभवों के संस्कार को संचित करते हैं और यह अवशिष्ट संस्कार हमारे वर्तमान आचरण को प्रभावित करता है। संचय शक्ति प्राणिमात्र में होती है। स्मृति उच्च वर्ग के जीवधारियों विशेषतः मनुष्यों में पाई जाती है। विचार कल्पना आदि जितनी बौद्धिक क्रियायें मानव वैशिष्ट्य की बोधक हैं, उन सब का आधार स्मृति है। हम जो अनुपस्थित व्यक्तियों के विषय में बातचीत करते हैं, अतीत की घटनाओं की आलोचना करते हैं, भविष्य की कल्पना चित्र भूतकाल के आधार पर निर्मित करते हैं वह सब स्मृति का फल है। मनुष्य जीवन में स्मृति का बहुत बड़ा महत्त्व है। ज्ञान, विज्ञान, साहित्य कला का आधार स्मृति है। स्मृति मन की मूल शक्ति संचय के कारण होती है अतः बौद्धिक कार्यों का या बुद्धि का उत्पादक मन है।

बुद्धि या ज्ञान उत्पन्न होने पर मन में चैतन्य आता है। धैर्य उत्पन्न होता है। संचय शक्ति को बृद्धि से स्मृति बढ़ती है। स्मृति को बढ़ाने के लिए स्वास्थ्यप्रद वस्तुओं का भोजन करना चाहिए। स्मृति की वृद्धि के लिए समानता, वैपरीत्य,

सह-कारिता इन तीनों नियमों का ध्यान रखते हुए स्मृति शक्ति को बढ़ाना चाहिए। जिस बालक ने खच्चर नहीं देखा उसे रूप साम्य के कारण घोड़े का स्मरण हो आता है। चंगेज खां, तैमूरलंग की याद दिलाता है। साधु पुरुष को देखकर दुष्ट की स्मृति हो आती है। अतः विचार शक्ति की तीव्रता के लिए स्मृति की आवश्यकता होती है। इसलिए इस मंत्र में कहा गया कि मन ज्ञान, चेतना और धैर्य का कारण है। इसीलिए इस मन्त्र में कहा गया 'यत्प्रज्ञान मुत चेतो धृतिश्च' अर्थात् मन बुद्धि का उत्पादक (उत) और (चेतः) स्मृति का साधन और (धृतिः) धैर्य स्वरूप है।

इसके बाद मन्त्र में कहा गया है 'यज्ज्योतिरन्तररमृतं प्रजासु' जो प्रजाओं में अमृत और ज्योति है, जो नाश रहित और प्रकाश स्वरूप है। मन के कार्य जीवित अवस्था में चेतन मन के साथ तो विद्यमान रहते ही हैं। चेतन मन को पार करके अचेतन में चले जाते हैं और उनके संस्कार तो हमेशा बने रहते हैं इसलिये मन को अमृत कहा है। यह नाशरहित होता हुआ हमारे जीवन के सब कार्यों पर प्रकाश डालता है अतः इसे ज्योति स्वरूप भी कहते हैं। मनुष्य के मन में अद्भुत शक्ति है परन्तु साधारणतया हमें इस शक्ति का ज्ञान नहीं होता क्योंकि ये शक्तियाँ बिखरी रहती हैं यदि शक्तियां संगठित होकर कार्य करने लगे तो मनुष्य आश्चर्यजनक कार्य कर डाले।

कई बार यदि किसी मनुष्य को बहुत अधिक कष्ट होता है और इस कष्ट के समय वह अपने किसी प्रिय को याद करता है तो उसकी सूचना उसे मिल जाती है। वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् श्री पूज्य दामोदर सातवलेकर जी का सुपुत्र गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ का विद्यार्थी था। वह अस्वस्थ हुआ। उसकी बीमारी बढ़ी।

श्री सातवलेकर जी का तार आया कि मुझे लगता है मेरा पुत्र सख्त बीमार है, सूचना दीजिए। इससे पहले तार जा चुका था कि 'सीरियसली इल, कम सून' 'सख्त बीमार तुरन्त आइए'। इसके बाद उनका तार आता है कि मुझे लग रहा है कि वह मर गया। सचमुच उनका तार मिलने से पहले ही 'एक्सपायर्ड' का तार जा चुका था। क्या यह मन की ज्योति के बिना सम्भव है ?

आक्सफोर्ड का एक विद्यार्थी केनन वारवर्टन अपने विषय में लिखता है कि मैं आक्सफोर्ड से एक दो दिन के लिए अपने भाई ऐक्टन वारवर्टन के पास रहने के उद्देश्य से गया। ऐक्टन बैरिस्टर था। जब मैं घर गया तो वह एक नाच में गया था। उसकी चिट्ठी मेज पर थी। मैं कुर्सी पर बैठ कर सो गया। एक बजे मैं उठा और चिल्लाया कि वह गिर गया है। मेरे सामने मकान, सीढी और उसके गिरने का पूरा २ चित्र आया था। वह गर्दन के बल गिरा था। जब वह घर आया तो उसने सारी कथा इसी रूप में सुनाई। यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। यह भी ज्ञात हुआ कि गिरते समय उसने मुझे बहुत याद किया था।

मन केवल अपने तक ही अपना प्रकाश वितरित नहीं करता। वह अपना प्रकाश दूसरों पर उगलता है। पलेमेरि-यनल्युडोविक नामक एक सात वर्ष का बालक था। उसके विषय में कहा जाता कि वह केवल उन्हीं प्रश्नों को हल करता था जो उसकी माता के मन में होता था। इससे यह सिद्ध होता है कि मनुष्य में शारीरिक शक्तियों के अतिरिक्त एक शक्ति है जिसे हम मानसिक कह सकते हैं जो अपना प्रभाव या प्रकाश दूसरों पर डालती है।

यह मानसिक शक्ति न केवल अपने और अपने से सम्बन्धित व्यक्तियों पर ही अपना प्रकाश डालती है बल्कि यह एक बड़े समूह, राष्ट्र या जाति पर भी अपना प्रभाव डालती है। मानसिक शक्ति से समृद्ध मनुष्य बड़े बड़े झुण्डों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकते हैं। एक बार एक मानसिक शक्ति पर नियन्त्रण करने वाले महानुभाव हिन्दू विश्व विद्यालय में कुछ चमत्कार दिखाने के लिये उपस्थित हुए। उन्होंने ७ बजे सभा भवन में पहुंचने को कहा था परन्तु वे आध घण्टा देर से पहुंचे। देर से आने के कारण लोग कुछ अन्यमनस्क थे। उन्हों ने आते ही कहा कि अब ठीक सात बजे हैं और मैं अपना खेल प्रारम्भ करता हूं। लोगों ने कहा कि महाराज सात तो कभी के बज चुके हैं। उन्होंने कहा कि जरा अपनी घड़ियों को देखिये। आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कि घड़ियों में सात बजे थे। पहला खेल उन्होंने यही दिखाया।

संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडीसन ने लिखा है "मेरे एक पुराने मित्र ने रीज नामक एक व्यक्ति को मेरे पास भेजा। कुछ व्यक्तियों को परीक्षण को बुलाया गया। नार्वे निवासी एक व्यक्ति को रीज ने कहा, "साथ के कमरे में जाओ और अपनी मां का विवाह से पहले का नाम और उसका जन्म स्थान तथा अन्य बातें लिखो।" रीज ने लिखने के बाद सब बातें ठीक २ बता दीं। इसके बाद एडीसन ने कहा मुझ पर भी कोई परीक्षण करो। एडीसन ने एक कमरे में जाकर लिखा 'क्या क्षारीय बैटरी के लिए निकल के उदोषिद की अपेक्षा कोई अधिक अच्छी चीज नहीं।"

हमने भी स्वयं कुछ परीक्षण किए हैं। गुरुकुल वैद्यनाथ धाम में एक विद्यार्थी नारायण (मुकामा घाट का) कक्षा

सात में पढ़ता था। हमने उसे चन्द्र लोक में भेजा। वहां का उसने साहित्यिक वर्णन करना प्रारम्भ किया और बाद में सम्मोहनावस्था में लाकर एक दूकान चलाने के विषय में पूछा। उसने बताया कि आप लोग दुकान के लिए जिस व्यक्ति को रक्खेंगे वह आपका सामान लेकर चलता बनेगा। सचमुच यह घटना इसी प्रकार घटी।

गोरखपुर में हमारे निवासस्थान पर एक स्त्री हिस्टीरिया की मरीज थी। आयु भी ४० वर्ष से अधिक हो चुकी थी। उसकी चिकित्सा कराते हुए बहुत समय बीत गया था पर उसे कोई लाभ नहीं हुआ था। हमने अपने मानसिक प्रभाव से उसे २-३ मास में लाभ पहुंचाया और सुना है कि अब तक २ वर्ष बीत चुके उसे कोई दौरा नहीं हुआ। इसी प्रकार स्वप्नदोष, विच्छूदंश और अर्धकपारी आदि की चिकित्सा हम मानसिक उपायों से स्वयं भी करते रहे हैं और अनेक व्यक्तियों को लाभ भी पहुंचता है। इस प्रकार यह मन भटकों को प्रकाश देता है। भूलों का मार्ग प्रदर्शक है। अतः कहा गया है "यज्ज-योतिरन्तरमृतं प्रजासु।"

यह मन जो चाहे करवा सकता है। इस की शक्ति अनन्त है। इसके बिना कोई कार्य नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति विजयशील व्यक्तित्व की कामना करता है तो उसे मन में शिव संकल्प लाने होंगे। संकल्पहीनता मनुष्य में भय उत्पन्न करती है और मन की यह कमजोरी-भय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। यह सदा मनुष्य के मन को विकृत करता रहता है और मनुष्य के मन को कार्य से दूर करता रहता है। परिणाम यह होता है कि मन कार्य में नहीं लगता और उसके बिना कार्य होता नहीं है। इस भय ने लाखों मनुष्यों को

असमय में वृद्ध कर दिया, हजारों मनुष्य इसके वश में होकर अकाल काल कवलित हो गये। देखते नहीं, यह जो बूढ़ा जा रहा है जरा इससे पूछो कि इसकी आयु क्या है ? इसे हम अच्छी तरह जानते हैं अभी इसके विवाह को १५ वर्ष भी नहीं हुए पर आज इसकी यह दशा है। अरे भाई, मुझे पहचानते हो। पहचानता क्यों नहीं, वही न हैं आप जिन्होंने मेरे साथ बचपन में चिड़ियों के घोंसले में जाकर बच्चे पकड़े थे, दिन भर बन्दरों से लड़ते थे—है न वही बात। तो भाई आज तुम्हारी यह दशा कैसी हो गई ? अरे, यह सब मानसिक चिन्ताओं का फल है कि मैं इस दशा को प्राप्त हो गया हूँ। मन में उठे संकल्प जीवन की सफलता और असफलता के कारण हैं। यदि तुमने मन में किसी कार्य को करने का निश्चय कर लिया तो विश्व की कोई शक्ति तुम्हें नहीं रोक सकती। तुम अपने उद्देश्य में अवश्य सफल हो जाओगे। जाओ और अपने संकल्पों को दृढ़ करो। ध्यान रखो मन के बिना कोई काम नहीं किया जा सकता है "यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते।" यही जीवन की सफलता का रहस्य है। हे भगवन् हमारा मन शिव संकल्पों वाला हो।

———

भूत भविष्यत् वर्तमान

का

निर्माता मन

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥

(येन) जिस (अमृतेन) अमर मन से (भूतम्) भूत (भुवनम्) वर्तमान (भविष्यत्) भविष्य सब कुछ (परिगृहीतम्) परिगृहीत है। (येन) जिस मन से (सप्त होता) सात ऋत्विजों द्वारा होने वाला यज्ञ (तायते) फैलाया जाता है (तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु) वह मेरा मन अच्छे संकल्पों वाला हो।

मनुष्य के मन संकल्पों का सबसे बड़ा बाधक भय है। भय न रहने पर संकल्प को संसार की कोई कठिनाई नहीं दूर कर सकती। भारतीय साहित्य में संकल्प का सबसे उत्तम उदाहरण ध्रुव और प्रह्लाद का है। पिता द्वारा गोदी में से उतार दिये जाने का अपमान उसे सहन नहीं हुआ। उस अटल पद को प्राप्त करने के लिए वह तेजस्वी बालक घर से निकल जाता है जहां से उसे कोई उतार नहीं सकता है। पिता को लज्जा अनुभव होती है और वह बालक का पीछा करता हुआ जाता है।

लौटो बेटा दे दूंगा दो ग्राम तुझे।
बोले ध्रुव क्या दे सकते हो ईश मुझे॥

पिता सारा राज्य देने को कहते हैं, लेकिन दृढ़ व्रत ध्रुव वापिस नहीं लौटता।

ऐसे ही हैं बाल भक्त प्रह्लाद ने एक बार नहीं कहा तो फिर हमेशा नहीं। वह कहता था "चाहे पहाड़ से गिरा दीजिए, आग में खड़ा कर दीजिये, चाहे सूली पर चढ़ा दीजिये, चाहे फांसी पर, मैं भगवान् का स्मरण किये बिना नहीं रह सकता।"

ध्येय से, संकल्प से जरा भी च्युत होना उचित नहीं। संकल्प तो संकल्प ही हैं। कपड़े के ढेर में एक भी चिंगारी पड़ जाने से सब स्वाहा हो जाता है। भय और पाप मन में चुपके चुपके प्रवेश करते हैं। रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि में एक बड़ा ही सुन्दर गीत है :—

वह बोला, मुझे एक कोने में जगह दे दो। मैं कोई गड़बड़ी नहीं करूंगा। लेकिन रात्रि के समय उसने विद्रोह किया और वह मेरी छाती पर चढ़ बैठा मेरे हृदयासन पर बैठी हुई मूर्ति को ढकेल कर उसने वहां अपना राज्य जमा लिया।"

इसी गीत का भाव है कि यह भय और पाप हमें धोखे में डाल कर धीरे धीरे हृदय में प्रवेश करता है। पर भय के चक्कर में पड़कर हमें अपते भविष्य को बिगाड़ना न चाहिये।

भय, कुछ नहीं। विश्लेषण कीजिये कि यह क्या है तो आपको मालूम पड़ेगा कि क्लेश, अनिष्ट और आपत्तियां हमारे कल्पना ही भय है। हम सोचते हैं कि वह विपत्तियां हमारे ऊपर कल या निकट भविष्य में आयेंगी और उनकी आने की चिन्ता से हम सूखते रहते हैं। पर वह कभी नहीं आती।

हमारा संकल्प-शक्ति से हीन निर्बल मन बहुत से घटित ज्ञानवपरिचित बातों को अनिष्ट मान कर उनसे तो भयत्रस्त होता ही है पर वह भविष्य में आने वाली बातों में सदा अनिष्ट की आशंका करके भी बेकार में भय पीड़ित बना रहता

है। आगे न जाने क्या होगा। मेरे इस कर्म की सिद्धि होगी कि नहीं ? 'कहीं इसका परिणाम बुरा न निकले' यह जो हम में भय रहता है वह तो बड़ा ही आत्मघातक है। यही मन में उठे हुए विकल्प हमारे कार्यों में बाधक होंगे और इस प्रकार हम अपने भविष्य को नष्ट कर डालेंगे।

वास्तव में भय कुछ नहीं। मनुष्य अपने मानस पटल पर कल्पना का एक चित्र बनाता है। जैसे मन में आया कि कहीं शेर न हो और वह छः फीट के अन्दर ही हमें दिखाई देने लगता है। और हम इतने भयभीत और हक्के बक्के हो जाते हैं कि कार्य शक्ति ही समाप्त हो जाती है। इसलिए जब तुम्हारे मन में भय या पाप आए तो उससे बचने का सर्वोत्तम उपाय शिव संकल्प है। शिव संकल्प मन में लाओ और कहो "आने दो देख लेंगे" और देखोगे कि वह आता ही नहीं।

यह मन भूतकाल का ज्ञाता है। मन के दो रूप हैं। एक ज्ञान मन जिसे चेतन मन कहते हैं और दूसरा अज्ञान मन अर्थात् अचेतन मन। हमारी वर्तमान काल की अतृप्त इच्छायें भूत बन हमारे अचेतन मन में चली जाती हैं। भूतकाल की ये अतृप्त इच्छायें गुप्त रूप से हमसे नाना प्रकार की विचित्र बातें एवं कार्य करवाती हैं और हमें पता भी नहीं लगता। क्या आपने किसी को देखा नहीं जो हर समय अपनी गर्दन मोड़ता रहता है, जो बिना किसी काम के पैर पटकता रहता है, जो बिना किसी मतलब के दरी के धागे उपदेश के समय निकालता रहता है, जो हाथ की अंगुलियों को बिना प्रयोजन मलता रहता है। इन सब का कारण मन में विद्यमान भूतकाल की इच्छायें हैं जिन्हें मन ही जानता है। वह क्रिया का कर्त्ता भी इन क्रियाओं को नहीं समझ पाता। श्री रामजी लाल शुक्ल ने अपने

मनोविज्ञान की पुस्तक में एक सच्ची घटना का उल्लेख किया है कि एक आदमी को यह आदत थी कि वह सदा अपने अंगूठे और कए अंगुली को रगड़ता रहता था। एक दिन उसने अपनी इसी आदत के कारण एक दस रुपये का नोट रगड़ते रगड़ते समाप्त कर दिया। एक बार पांच रुपए का और एक बार सौ रुपए का। शुक्ल जी ने उसके भूतकाल का मानसिक अध्ययन करके यह पता लगाया कि इसका कारण यह ग्रन्थि है कि एक बार उसने किसी दस्तावेज पर अंगूठे का निशान बनाया था और जिसका परिणाम उसके विपक्ष में हुआ। अतः वह आज भी इस कालिमा को दूर करने का प्रयत्न कर रहा है।

अचेतन मन जिन भूतकालीन बातों को जानता है उनके द्वारा ही वह साहित्य और काव्य का निर्माण करवाता है। यह अचेतन मन भूत की बातों का सग्रह अनुभव और संस्कारों के रूप में अपनी संयम शक्ति द्वारा रखता है और समय आने पर वर्तमान का निर्माण करता है। भविष्य का मार्ग बतलाता है।

यदि हम मन को वश में कर लें तो संयम की कोई शक्ति हमें मार्गभ्रष्ट नहीं कर सकती है। जब मन हमारे वश में होगा तो पुरुषार्थ और कर्म हमारे अपने हाथ में हो जायेंगे।

"कृत मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः मेरे दांयें हाथ में कर्म और पुरुषार्थ है और मेरे बांये हाथ में विजय रखी हुई है। कर्म और पुरुषार्थ ही हमारा वर्तमान है और विजय भविष्यत् काल। कर्म और पुरुषार्थ मनके विना संभव नहीं। विजय इनके बिना हो नहीं सकती अतः वर्तमान और भविष्यत् का आधार भी मन है। मन में यदि शिव संकल्पों का समावेश हो गया तो आप निश्चित रहिएं आप पुरुषार्थ और कर्मों की ओर बढ़ते चले

जायेंगे। आपका भविष्य सुन्दर बनता चला जायगा। मनमें यदि आत्मविश्वास की भावना आ गई तो कर्म आसान हो जायेगा। बच्चा पढ़ता नहीं वह शरारत करता है। क्लास में बैठने पर उसका मन नहीं लगता है। सोचा है कभी आपने इसका कारण ? इसका कारण यही है कि उसमें यह विश्वास नहीं रहा कि वह पाठ समझ सकता है। उसमें यह शक्ति पैदा कीजिए कि उसका मन अपने ऊपर विश्वास करे। मेरे एक मित्र मध्य प्रदेश के रहने वाले हैं उन्होंने एक पत्र मुझे अपने बच्चे के विषय में लिखा कि वह सुस्त रहता है, पढ़ता नहीं। आठ वर्ष का हो गया है अभी तक न तो अक्षर लिखना सीख पाया है और न वह पहाड़े ही सुनाता है। मैंने उन्हें लिखा कि आप बच्चे की कमजोरी का कारण न समझें यह तो हमारा और आपका दोष है। आप जरा कष्ट करके उसकी तीन चार दिन की रुचि अरुचि, की दिनचर्या आदि मुझे लिख भेजिए। मैं कोशिश करूंगा कि उसे रास्ते पर ले आऊं। अनेक बार परीक्षण करने के बाद मैंने पता लगाया कि इसकी रुचि खेलों की ओर है अतः वर्तमान समय में वह काम नहीं कर पाता। और परिमाणतः वर्तमान दुःखी और भविष्य अन्धकारमय है। मैंने उसे पढ़ाने और खेलने का रूप दोनों बताये और अब १५ वर्ष की आयु में वह कक्षा के अच्छे विद्यार्थियों में है। खेलों में तो वह बहुत ही अच्छा है। उसका वर्तमान मन ने बनाया और भविष्य भी बनाने वाला मन ही है। इसीलिये कहा गया "येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतम्।"

सचमुच मन ही मनुष्य में आत्मविश्वास भरता है। यह आत्मविश्वास किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को आकर्षक और विजयशील बनाता है। आत्मविश्वास की अग्नि जब हम में प्रज्वलित हो रही होगी उस समय संसार में हमारी विजय

निश्चित है। संसार में प्रतिजन से सम्बन्ध रखने वाले वैयक्तिक और राष्ट्रीय ऐश्वर्य उन्हीं व्यक्तियों को प्राप्त होता है जिनमें चिरकाल तक उद्योग करते जाने की शक्ति होती है, जिनमें लगन तथा धैर्य होता है, जिनमें अड़े रहने, उठे रहने का गुण होता है, जो कदम कभी पीछे हटाना नहीं जानते। दुनिया उस मनुष्य के लिए खुद रास्ता कर देती है जो शक्तिशाली, आत्म-विश्वासी और दृढ़ाग्रही होता है, जो इस बात को जानता है कि संसार में ऐसी कोई विपत्ति नहीं जो मेरी शक्ति का रास्ता रोकसके। कायर मनुष्य ही इनसे डर सकता है, रास्ते में इन्हें पाकर पथभ्रष्ट हो सकता है, पर मैं तो इन पर पूरी पूरी विजय पा सकता हूं। आपने तो इतिहास पढ़ा है न ? क्या आप भूल गए महात्मा बुद्ध और शंकर को जिन्होंने इसी आत्मविश्वास के बल पर संसार को नया मार्ग दिखाया था, क्या फांसी के तख्ते पर खुशी से लटकते और सन्ध्योच्चारण करते हुए रामप्रसाद बिस्मिल की मूर्ति मुस्कराते हुए नहीं दिखाई दे रही, क्या भयंकर विष के बाद प्रसन्नता के साथ "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" यह महर्षि दयानन्द का नाद नहीं सुनाई दे रहा ? क्या गोली लगने के बाद भी भारतवर्ष में जन्म लेकर पीड़ितों और दुःखियों के दुःखों को दूर करने की कामना करते हुए स्वामी श्रद्धानन्द की हार्दिक भावना आपको अभिभावित नहीं कर रही ? क्या गोली लगने के बाद भी महात्मा गांधी का राम, राम का उच्चारण आपके लिये प्रेरणा का काम नहीं कर रहा ? क्या जहर का प्याला पीता हुआ सुकरात का सत्योपदेश आपके कर्णगोचर नहीं हो रहा ? वह हकीकतराय मौलवी साहब की लटकती तलवार देखकर भी हिन्दू धर्म को छोड़ने को तैयार नहीं हो रहा; क्या आपने नहीं सुना है ? यह सब मन की शक्ति का ही प्रभाव है।

अब आता है सात होताओं के यज्ञ का कर्त्ता भी मन है। तैत्तिरीय उपनिषद में एक कथा आती है कि ससार में जब सभी शरीर बन चुके तो ऋषियों और योगियों के सूक्ष्म शरीर इस संसार में आए। ईश्वर के बनाए सभी शरीरों को उन्होंने देखा और अन्त में उन्हें मानवीय शरीर पसन्द आया और उसे उन्होंने अपना निवास स्थान बना लिया। तभी से मानव शरीर ऋषि कहलाता है। सात ऋषि उसमें रहते हैं पांच ज्ञानेन्द्रियां अर्थात् आंख, नाक, कान, त्वचा और वाणी इन के अतिरिक्त बुद्धि और मन मिलकर सात ऋषि हुए।

परन्तु यह जीवन यज्ञ वास्तव में मन के द्वारा ही संचालित होता है। वैसे तो ये सातों इन्द्रियाँ आत्मा के साधन रूप हैं। आत्मा इनको कारण बना कर अपना कार्य करता है। परन्तु मन के बिना इन में से कोई इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकती। मन अत्यन्त सूक्ष्म और इन्द्रियातीत है। हमारा शरीर एक प्रकार का बड़ा कारखाना है। पाठकों में से जिन्होंने कोई बड़ा कारखाना अथवा कोई मिल देखी होगी उन्हें ज्ञात हो जायगा कि बाहर से कारखाने में बराबर माल आता है पश्चात् उस माल की उचित रीति से छान बीन होती है और उसके बाद कारखाने के काम के लिए उपयोगी माल अलग चुन कर रखा जाता है। इस चुने हुये कच्चे माल से पक्का माल तैयार किया जाता है उसकी कई गाठें कारखाने से बाहर जाती रहती हैं। इन भिन्न भिन्न कार्यों को करने के लिए भिन्न-भिन्न मनुष्य नियुक्त होते हैं। हमारे शरीर की अवस्था भी ठीक वैसे ही है। साँसारिक वस्तुओं का अनुभव प्राप्त करने और उस अनुभव के द्वारा इच्छानुसार कार्य करने के लिये हमें इन्द्रियां प्राप्त हैं। एक ज्ञानेन्द्रियां और दूसरी कर्मेन्द्रियां। नाक, कान, आंख,

जिह्वा और त्वचा को ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ, पैर, मुँह, गुदा और उपस्थेन्द्रिय को कर्मेन्द्रियां कहते हैं। हमें किसी भी बाह्य पदार्थ का ज्ञान एक अथवा एक से अधिक ज्ञानेन्द्रियों द्वारा होता है। बाहर का माल अन्दर लाने के लिये जिस प्रकार भिन्न २ दरवाजे होते हैं, उसी तरह हमारी ज्ञानेन्द्रियां भी बाह्य वस्तुओं का ज्ञान अन्दर लेने वाले भिन्न २ द्वार हैं। जब ज्ञानेन्द्रियां अपना २ कार्य करने लगती हैं तब सृष्टि की वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता। जैसे माल को अन्दर लाने के अतिरिक्त कारखाने के दरवाजों का कोई काम नहीं होता वैसे ही बाह्य पदार्थ का संस्कार अन्दर लेने का एक मात्र कार्य ज्ञानेन्द्रिय का होता है। प्रत्येक संस्कार के होते ही उसकी ज्यों की त्यों खबर मन को पहुंचा करती है। हमारे शरीर में असंख्य अन्तर्मुख ज्ञान तन्तु होते हैं। यह ज्ञान तन्तु संस्कारों का सन्देश मन तक पहुंचाते हैं। बुद्धि के द्वारा मन ग्राह्य और त्याज्य संस्कारों को अलग अलग करता है। और फिर मन ही कर्मेन्द्रियों द्वारा क्रियाओं को करवाता है। बहिर्मुख ज्ञान तन्तु मन की आज्ञाओं को विश्वासपात्र दूत की तरह कर्मेन्द्रियों तक पहुँचाते हैं और इस प्रकार यह जीवन यज्ञ चलता है।

एक उदाहरण द्वारा इस विषय को और भी स्पष्ट किया जा सकता है। मान लीजिए आप कहीं बाहर जङ्गल में गए। घर कुछ दूर है। बादल गरजने लगे, बिजली चमकने लगी, आंधी चलने लगी इस बाह्य सृष्टि की हलचल का परिणाम हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर होता है और उन संस्कारों के समाचार अन्तर्मुख ज्ञान तन्तुओं द्वारा मन के पास भेजे जाते हैं मन इन संस्कारों की तुलना पूर्व प्राप्त ज्ञान और अनुभवों के साथ करता है। उसे पता लगता है कि वर्षा होने वाली है वह बहि-

मुंख ज्ञान तन्तुओं द्वारा पैरों को आदेश देता है। भाव यह है कि वाह्य पदार्थ के संयोग का ज्ञान सर्व प्रथम मनुष्य के मन को होता है और उसके प्रभाव के अनुसार शरीर की क्रिया होगी। जैसे एक और उदाहरण लीजिये 'आपका पुत्र मर गया' और 'मेरा पुत्र मर गया' इन दोनों तारों को पढ़ते समय केवल चार शब्दों का ही नेत्रों से संयोग होता है परन्तु यह सच होने पर भी एक के पढ़ने से मनुष्य वेहोश हो जाता है और दूसरे के पढ़ने से मनुष्य केवल आह भर कर रह जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी शारीरिक क्रियायें अथवा दूसरे शब्दों में यह जीवन यज्ञ का चलाने वाला मन है। मन के द्वारा ही शरीर के एक भाग दूसरे से संवन्धित होते हैं। पैर में लगी चोट का बुःख सारे शरीर को मन के द्वारा भोगना पड़ता है। यदि मन दूसरी ओर लगा रहता है तो यह शरीर यज्ञ ठीक दशा में न चल कर उसी दिशा में चलने लगता है। इसीलिए इस मन को कहा गया है कि यह सात होताओं वाले इस शरीर यज्ञ का संचालक है, इसका नेता है, बिना इसके यह यज्ञ चल ही नहीं सकता।

अन्त में पुनः कहा गया यह शक्तिशाली मन जब हमारे यज्ञ का संचालक है तो निराशा क्यों ? हे जीव ! इस मन के रहते हुए भी तू हारा हुआ क्यों पड़ा है ? तुझ में तो संसार की अनन्त शक्ति प्रवाहित हो रही है। तेरे मस्तिष्क में ज्ञान का सूर्य चमक रहा है। तेरे हृदय में स्वयं भगवान् का वास है। तू क्या नहीं कर सकता, उठ और शिव सङ्कल्प आरम्भ कर। विश्व का कल्याण कर।

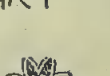

मन में सब प्रजाओं के चित्र ओत प्रोत हैं

यस्मिन्नृचः साम यजू ँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु ॥

हे प्रभो ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचः साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन्) जिस में (यजू ँषि) यजुर्वेद और अथर्ववेद भी (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि-पहिये के बीच के काष्ठ में आरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों के समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध हैं (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पमस्तु) उत्तम संकल्पों वाला हो ।

वेद चार हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद । वेद शब्द के लिये त्रयी विद्या शब्द का प्रयोग होता है । त्रयी विद्या को देख कर कुछ लोग कहते हैं कि वेद वास्तव में तीन हैं और अथर्व वेद की बाद में उत्पत्ति हुई । परन्तु बात यह नहीं है । त्रयी विद्या से यह अभिप्राय है कि ज्ञान कर्म और उपासना की दृष्टि से चारों वेदों में उन्हीं तीन विषयों का वर्णन किया गया है । महाभारत में लिखा है :—

यत्री विद्यामवेक्षेत वेदे सूक्तमथाङ्गतः ।
ऋक्सामवर्णा क्षरता यजुषोऽथर्वणस्तथा ॥

अर्थात् ऋग्यजुसाम और अथर्व में ही त्रयी विद्या है । यहां त्रयी विद्या के साथ चारों वेदों के नाम दिये गये हैं जिससे ज्ञात होता है कि त्रयी विद्या से अभिप्राय चारों वेदों से ही हैं ।

दूसरी बात यह है कि चारों वेदों में तीन ही प्रकार के मन्त्र हैं इसलिये चारों वेदों का समावेश तीन में हो जाता है ; सर्वानुक्रमणी में लिखा है:—

विनियोक्तव्य रूपश्च त्रिविधः सम्प्रदर्श्यते ।
ऋग्यजुः सामरूपेण मन्त्रो वेदचतुष्टये ॥

अर्थात् विनियोग किये जाने वाले मन्त्र चारों वेदों में तीन ही प्रकार के हैं। मीमांसा में इन तीनों प्रकार के मन्त्रों का वर्णन करते हुए लिखा है जिन मन्त्रों के अर्थ के साथ पाद व्यवस्था है वे ऋक्, जो गाने योग्य हैं वे साम और जो इन दोनों के अतिरिक्त हैं वे यजु हैं। इससे ज्ञात होता है कि चारों वेदों को तीन विभागों में विभक्त करने के कारण मन्त्रों के तीन प्रकार और उन मन्त्रों में प्रतिपादित तीन (ज्ञान, कर्म, उपासना) विषय ही हैं। इसलिये शिवसंकल्प सूक्त के मन्त्र में लिखा है कि जिस प्रकार रथ की नाभि पहिये के बीच के काष्ठ में आरे स्थित हैं उसी प्रकार शुद्ध मन में ऋग् यजुः और साम वेद स्थित हैं।

अब आप देख सकते हैं कि इस संसार में ज्ञान की प्राप्ति मन के द्वारा सम्भव है, कर्म मन के द्वारा ही हो सकते हैं और उपासना भी मन के द्वारा करने पर फलदायिका होती है।

ज्ञान की प्राप्ति मन के द्वारा होती है इस विषय पर आज सम्पूर्ण विद्वत्समाज एकमत है। बालकों को शिक्षित करने के लिये आज के मनोवैज्ञानिक यह प्रयत्न कर रहे हैं कि किस प्रकार पढ़ने के लिये उनके मन को केन्द्रित किया जा सकता है। पाठ्य विषयों की ओर ध्यान लगाया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि मन की मूल-भूत कुछ सामान्य शक्तियां हैं। ये सामान्य शक्तियां सप्रयोजनता, संचय और सम्बद्धता की हैं। इन्हीं शक्तियों के कारण मनुष्य या प्राणियों के आचरण यांत्रिक नहीं होते। प्राणियों में विकास की सम्भा-

बना रहती है अब जब हम प्राणियों के आचरण को देखते हैं तो हमें उनमें कुछ प्रवृत्तियों का पता चलता है। इन सब प्रेरक शक्तियों को मनोवैज्ञानिक मूल प्रवत्तियां (Instincts) कहते हैं। यह मूल प्रवृत्तियां संख्या में चौदह हैं। पलायन युयुत्सा, निवृत्ति, पुत्रकामना, शरणागति काम प्रवृत्ति, जिज्ञासा, दैन्य, आत्मगौरव, सामूहिकता, भोजनान्वेषण, सग्रहवृत्ति, रचनावृत्ति और हास। इनमें से हास को छोड़कर शेष वृत्तियां मनुष्य और पशुओं में समान रूप से पाई जाती है। हासवृत्ति केवल मनुष्यों में होती है। गधा कितना भी प्रसन्न हो वह हंसेगा नहीं। बैल को आपने कभी हंसते हुए न देखा होगा। इस प्रकार इन मूल प्रवृत्तियों को हमें शिक्षा में प्रयोग करना चाहिये और यदि ये प्रवृत्तियां न होतीं तो मनुष्य इतना उन्नत न हुआ होता। मन में जब किसी विषय के प्रति हमारी जिज्ञासा उत्पन्न होती है तभी तो हम ज्ञान प्राप्ति की चेष्टा करते हैं। बहुत छोटा बच्चा जब खिलौने को तोड़ कर फेंक देता है तो उसकी विनाश वृत्ति के पीछे उसके मन में छिपी जिज्ञासा वृत्ति ही काम कर रही होती है कोई प्रौढ़ व्यक्ति जब हिमालय को ऊंचाई नापना चाहता है अथवा उत्तरी ध्रुव की भौगोलिक स्थिति का प्रत्यक्ष करना चाहता है तो इसी वृत्ति की प्रेरणा से। कथा सुनकर जब बच्चा पूछता है 'फिर क्या हुआ' अथवा जीवन की क्षण भंगुरता को देखकर जब कोई दार्शनिक जन्म मृत्यु की समस्या का समाधान करने को आतुर हो उठता है तो वे दोनों ही जिज्ञासा वृत्ति के प्रभाव से। यदि मनुष्य के मन में ज्ञान की प्राप्ति के लिए जिज्ञासा वृत्ति नहीं होती तो हम यह नहीं कह सकते कि हमारी संस्कृति का क्या रूप होता परन्तु इतना तो निश्चित है ज्ञान विज्ञान की इतनी उन्नति अवश्य ही नहीं हुई होती। अर्थात् संसार में ज्ञान की उन्नति के लिये मनुष्य का विषय के प्रति मन लगाना आवश्यक है। जब किसी विषय

के प्रति हमारे मन में रुचि उत्पन्न होगी तब हम उसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

कर्म भी मन के द्वारा ही किये जा सकते हैं। हिप्नोटिज्म या सम्मोहन संवशीकरण की विद्या क्या है। इसमें हम अपने मन पर अधिकार कर दूसरे के मन को वशीभूत कर लेते हैं और फिर उसके कर्मों को नियंत्रित भी कर सकते हैं। असत्य-भाषी को सत्यवादी कुसंगति में रहने वाले को सुसंगति में रहने वाला बनाया जा सकता है। यह तो बड़ी सीधी सी बात है कि यदि हमारा मन कहीं और होता है और हम कर्म कुछ और कर रहे होते हैं तो हमें उस कार्य में सफलता नहीं मिलती। मनुष्य कर्म भी कैसे करता है। जब अन्तर्मुखी ज्ञान तंतुओं द्वारा पदार्थों का ज्ञान मन तक पहुँचता है तब मन ही बुद्धि द्वारा अपने लिये उपयुक्त एवं ग्राह्य बातों को स्वीकार कर बहिर्मुख ज्ञान तंतुओं से जो मन के विश्वासपात्र दूत की तरह उसके संदेश कर्मेन्द्रियों तक पहुँचाते हैं तब वह कार्य करता है। इस प्रकार कर्म का करवाने वाला मन है।

उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है स्वामी जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है उपासना से ब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है। जब उपासना द्वारा ब्रह्म के साक्षात्कार का आनन्द पाना चाहते हैं तो हमें यह करना चाहिये कि अपने मन से घृणा और ईर्ष्या को दूर करदें। यदि आपके मन में घृणा, राग, द्वेष की अग्नि जलती रही तब आपको उपासना का फल नहीं मिलेगा। उपासना तो शुद्ध मन से ही की जा सकती है। आपके मुख में राम और बगल में छुरी है तो आप उपासना नहीं कर सकते—नहीं कर सकते। यदि आपको गायत्री की उपासना करनी है तो अपने मन से घृणा को दूर भगा दो ईर्ष्या और वैर भावना को मन से निकाल दो फिर देखो कि उपासना का आनन्द और सुख मिलता है

कि नहीं। वास्तव में उपासना का आधार भी मनुष्य का मन है।

इस प्रकार ज्ञान, कर्म और उपासना का आधार मन है। यदि किसी कार्य में हमारा मन नहीं लगेगा तो हमें उसका ज्ञान नहीं होगा। ज्ञान के बिना कर्म कभी सम्भव नहीं और उपासना के लिये तो ज्ञान और कर्म दोनों की आवश्यकता होती है। इसलिए इस मन्त्र में कहा गया है "यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः" अर्थात् ऋक् (ज्ञान) यजुः (कर्म) साम (उपासना) ये सब रथ में लगे आरे की तरह जिस मन में संयुक्त हैं।

अब इस मन्त्र के दूसरे भाग पर भी हमको विचार करना चाहिये। दूसरा भाग है "यस्मिश्चित्तँ सर्वमोतम् प्रजानाम्" जिस मन में सब प्रजाओं या प्राणियों के चित्त ओत प्रोत हैं।

आइए, इस पर भी विचार करें: --

मनुष्य के मन के तीन प्रकार हैं। एक चेतन मन, दूसरा अचेतन मन और तीसरा उपचेतन मन (या सीमान्त चेतना) इन में उपचेतन मन उसे कहते हैं जिसमें बहुत सी बातें विद्यमान रहती हैं और जिनकी सत्ता का हमें ज्ञान भी होता है परन्तु उस समय हमें उनका ध्यान नहीं रहता। अंग्रेजी में इसे Marginal (सीमान्त चेतना) भी कह सकते हैं। थोड़ा सा भी विचार करने से इस विषय को समझा जा सकता है। हमारी चेतना का ज्ञान स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ बातों को हम स्पष्ट रूप से जाना करते हैं और कुछ को अस्पष्ट रूप से। मैं इस समय 'चेतना का आधार मन हैं' इस विषय में कुछ लिख रहा हूँ। अतः इस विषय के विषय में हमने जो कुछ सोचा, समझा या पढ़ा है वह सब चेतना में उपस्थित है। इस उपस्थित वस्तु को चेतना मन का स्वरूप कह सकते हैं, उपचेतन मन में मेरे पिता, माता, सामने स्थित

मेज, तथा उस पर रखे पुराने समाचारपत्रों का ढेर, घर के भीतर बच्चे रोने का शब्द, गली में आने जाने वाले लोगों के पैरों की आहट ये सब मन के उसी चेतना में रहते हैं। इनका हमें ज्ञान तो होता है परन्तु उस समय इनका ज्ञान नहीं रहता, जब हम अपनी सीमान्त चेतना में विद्यमान कुछ विषयों को गिना रहे थे उस समय वे विषय हमारी स्पष्ट चेतना के अंग बन गये थे। गिनाने से पहले वे सीमान्त चेतना में थे और फिर गिना चुकने के बाद वे उसी अर्द्ध-प्रकाशित मनो प्रदेश में चले गये परन्तु गणना करते समय हमें उनका स्पष्ट ज्ञान था। अतः हमें याद रखना चाहिये कि हमारे चेतन तथा उपचेतन या सीमांत चेतना की कोई सीमा नहीं। जो बातें अभी स्पष्ट चेतना में हैं वह अस्पष्ट चेतना में चली जा सकती हैं और अस्पष्ट चेतना अथवा सीमान्त चेतना की अनेक बातें स्पष्ट चेतना का विषय बनती रहती हैं।

इन दोनों मनों के अतिरिक्त एक अचेतन मन भी है। इस मन का निश्चित रूप नहीं बतलाया जा सकता पर इतना तो निश्चय है कि अचेतन मन है अवश्य। अचेतन मन को अन्तर्मन भी कहते हैं। चेतन मन को बहिर्मन। अचेतन मन के विषय में बताने से पूर्व यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य दो प्रकार की क्रियायें करता है एक सहेतुक क्रिया और दूसरी अहेतुक क्रिया। सहेतुक क्रिया में हमारे मन का व्यापार जारी रहता है। जैसे सूई के छेद में धागा पिरोते समय हमारा मन पूरी तरह उसमें लगा होता है। ऐसी क्रियायें सहेतुक क्रियायें हैं। अहेतुक क्रियाओं में मन का होना न होना बराबर है। अहेतु क्रियाओं में यद्यपि प्रत्यक्ष रूप में मन नहीं होता परन्तु फिर भी अहेतु क्रिया बुद्धिमानी से की जाती है। क्या किसी ने बातचीत करते-

करते अपने हाथ के छुरे से अपना ही गला काट लिया अथवा भोजन करते करते किसी ने ग्रास मुख में रखने के बजाय नाक अथवा कान में रखा ? गर्मी के दिनों में हाथ का पङ्खा अहेतुक रूप से हिलता है। वास्तव में अहेतुक क्रियाओं का आधार भी मन है परन्तु मन से संलग्न न रहने पर भी यह क्रियायें होती रहती हैं।

हम इस बात को अब इस प्रकार कह सकते हैं कि जिस मन के द्वारा हमारे शरीर को सहेतुक क्रियायें करने की प्रेरणा होती है वह मन शरीर रूपी साम्राज्य का प्रधान सेनानायक है इस सेनानायक की मातहती में एक और दूसरा मन सदैव काम करता है। मुख्य सेनापति केवल सेना की जांच करता और उचित प्रबन्ध कर देता है किन्तु यदि किसी सिपाही की पोशाक फटी हो या किसी को छुट्टी लेनी हो तो ये सब छोटे बड़े काम उसके मातहत पदाधिकारी ठीक ठीक कर सकते हैं। इसी तरह हर घड़ी शरीर की जो असंख्य क्रियायें होती हैं उनकी तरफ मुख्य मन को देखने की आवश्यकता नहीं होती। वे क्रियायें अप्रधान मन सुपुर्द होती हैं। इसी कारण खुजली छूटने पर खुजलाहट, हाथ में सूई चुभने पर हाथ का पीछे हट जाना, अन्न का पाचन होना आदि क्रियायें मन को सूचनायें बिना दिए हुए भी होती रहती हैं। इस प्रकार वास्तव में हमारी चेतना काम करती रहती है।

शरीर शास्त्र के पण्डितों का कहना है कि मनुष्य के प्रायः सभी शरीर व्यापार अहेतुक होते हैं और उनसे बहिर्मन का सम्बन्ध नहीं रहता, इच्छा शक्ति (Will) बुद्धि (Intellect) और भावना (Emotnio) ये तीन बहिर्मन के गुण अन्तर्मन में होते हैं। शरीर पोषण का कार्य भी अन्तर्मन करता है। यह

अन्तर्मन कभी बहिर्मन की सहायता से, कभी अपनी अधकच्ची इच्छा से और कई अवसरों पर बहिर्मन की प्रेरणा के विरुद्ध काम करता रहता है।

शरीर के प्रायः सभी व्यापारों से इस अन्तर्मन का निकट सम्बन्ध है। शरीर के प्रत्येक भाग में अन्तर्मन विद्यमान है। वह मन मस्तिष्क अथवा ज्ञान तन्तुओं के महत्त्वपूर्ण भाग में, शरीर के प्रत्येक छोटे बड़े भाग में, नस नस में, सब स्नायुओं में प्रत्येक सूक्ष्म पेशी में भी है। यह कहना असम्भव है कि शरीर के अमुक भाग में अन्तर्मन नहीं। हमारा ध्यान अपने शरीर की ओर चाहे न रहे परन्तु फिरभी वह निरामय अवस्था में रहता है। इस प्रकार हम ज्ञात अवस्था में अथवा अज्ञात अवस्था में जितनी भी क्रियायें करते हैं सब का आधार मन है। इस प्रकार हमने देखा कि हमारे शरीर से जितनी भी चेतन क्रियायें होती हैं या हो सकती हैं उन सब का आधार मन है। इसी लिये कहा गया कि जिसमें प्राणियों की समग्र (चित्तम्) चेतना सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है। 'यस्मिंश्चित्त सर्वमोतं प्रजानाम्।

अन्त में पुनः दोहराया गया कि "तन्मे मनः शिव संकल्प-मस्तु" वह मेरा मन शिवसंकल्पों वाला हो।

—०—

मन ही शरीर रथ का सारथी है

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभिशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथि:) उत्तम सारथी (अश्वानि) घोड़ों की तरह (नेनीयते) इधर उधर ले जाता है और जो मन, अच्छा सारथी (अभीशुभि:) रस्सियों से (वाजिन इव) वेगवाले घोड़ों के समान मनुष्यों को वश में रखता है और (यत्) जो (हृत्प्रतिष्ठम्) हृदय में स्थिर है (अजिरम्) जरा रहित है (जविष्ठम्) जो अतिशय गमन शील है। (तत्) वह (मे) मेरा (मन:) मन (शिव संकल्प-मस्तु) उत्तम सङ्कल्पों वाला हो।

मन क्या है ? यह हम अपने पिछले लेखों में बता चुके हैं। यह इन्द्रियों और आत्मा से भिन्न वस्तु है। आत्मा के अन्दर विविध ज्ञान के आकारों और समग्र इन्द्रियों के व्यापारों का यन्त्र है। आत्मा अर्थात् चेतन शक्ति सभी इन्द्रियों से सदा युक्त रहती है पर एक काल में सर्वेन्द्रिय-बोध न होना किन्तु किसी एक इन्द्रिय के विषय का ही ज्ञान होना तथा मस्तिष्क में संचित विविध ज्ञान समूह में से एक समय में किसी एक ज्ञान धारा का ही स्मृति पथ में आना आदि व्यवहार आत्मा और इन्द्रियों के मध्य में वर्तमान उपकरण का साधक है। वह उपकरण मननाम का अ तःकरण है, जिस इन्द्रिय के साथ वह संयुक्त

होता है उसी का दर्पण बन आत्मा में साक्षात् कराता है।

मन में प्रख्या (सत्व ज्ञान) प्रवृत्ति (रजः गति इन्द्रिय व्यापार में प्रवृत्ति) स्थिति (तमः जाड्य अबोध) परिणाम हुआ करते हैं। आत्मा इन परिणामों से सदा पृथक है तथापि आत्मा का आन्तरिक उपकरण होने से मन अयस्कांत मणि के सदृश उसको अपनी ओर रंजित कर लेता है अतः आत्मा भी उक्त परिणामों का द्रष्टा बनता है।

मन की पांच भूमियां हैं। इन भूमियों के द्वारा सांसारिक और यौगिक दोनों ही अवस्थाओं में यह शरीर और आत्मा का संचालन करता है। आत्मा इसके बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। मन की पांच भूमियां क्रमशः क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त एकाग्र और निरुद्ध हैं। इन में क्षिप्तावस्था में मन चंचल रहता है मनुष्य को इधर उधर नचाता है। यह मन की राजसिक अवस्था है। मोहग्रस्त ज्ञानशून्य मन मूढ़ कहलाता है। इस अवस्था से मन में न किसी ज्ञान का उदय होता है और न किसी क्रिया में मनुष्य की रुचि होती है। यह तामसिक अवस्था है। विक्षिप्त मन राजसिक और तामसिक दोनों दृष्टियों से युक्त होता है। एकाग्र और निरुद्ध मन सात्विक गुणों से युक्त होता है। तात्पर्य यह है कि मनुष्य के राजसिक, तामसिक और सात्विक भावों का उदय करने वाला और उनके अनुसार आत्मा को तथा इन्द्रियों को प्रतिभासित एवम् संचालित करने वाला मन है। इस प्रकार मनुष्य की इन्द्रियां मन के वशीभूत होकर संचालित होती हैं।

यदि आप विचार करें कि वास्तव में मनुष्य क्या है तो आप को यह विश्वास हो जायगा कि विचारों का समूह ही मनुष्य है। मनुष्य आखिर क्या है? स्वस्थ और प्रसन्न मनुष्य के

मन पर प्रभाव डाल दीजिए कि तुम अस्वस्थ हो। सारथी को अस्वास्थ्य की दिशा का बोध हुआ और यदि वह उधर चल पड़ा तो आप देख लीजिए कि वह मनुष्य अस्वस्थ हो जायगा।

पादरी साहब बूढ़े हो गये। उनके दांत टूट गये। बनावटी दांत जब रात को उन्होंने भूल से बाहर छोड़ दिये तो एक चूहा उठाकर ले गया। परन्तु प्रातः काल जागने पर उन्हें विश्वास हो गया कि यह दांत मेरे पेट में चले गये हैं। वैसे साधारण बुद्धि से पेट में जाने की बात जंचती तो नहीं परन्तु मन में यह विश्वास जमने पर पेट में पीड़ा आरम्भ हुई और अन्त में सिविल सर्जन द्वारा आपरेशन का निश्चय हुआ। आप रेशन के लिए तैयार होने पर जब फोन द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि दांत मिल गये हैं, चूहे के बिल में थे तो उनकी पीड़ा शांत हुई। क्या इसे मानसिक प्रभाव नहीं कहा जा सकता ? क्या यह मन रूपी सारथी का करिश्मा नहीं।

आप मन का प्रभाव इन्द्रियों पर देखना चाहते हैं तो आइये आपको दिखायें। इसके लिए एक रोगी को पलंग पर आराम से सीधा लिटा दीजिए और अभिमर्श की क्रिया करते हुए उसे आदेश दीजिए कि :—

मैं तुम्हारे उदर शूल को दूर कर रहा हूं, वह अभी दूर हो जायेगा, दूर हो रहा है, कुछ दूर हो गया है, अब तो बिल्कुल दूर हो गया है, तुम स्वस्थ हो गये हो।

रोगी पर यदि आपने अपने मन का प्रभाव डाल दिया तो वह अवश्य दर्द भूल जायगा।

मन शरीर रथ का सारथी कैसे है ? जापान में परीक्षण किया गया है कि काली चिड़ियों को सफेद चिड़ियों में रखा

गया और उन्हें सफेद खाना भी दिया गया और उनका सारा वातावण सफेद रहा तो उनके बच्चे भी सफेद पैदा हुए। यह तो 'मन शरीर के रूप रङ्ग को जिस ओर चाहता है ले जाता है' का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त भी मन अपना संसार निर्माण करता है। आपने सोचा कि कि आप नित्य यम नियमों का पालन करेंगे परन्तु यदि मन ने आपका साथ न दिया या आपने इस मन को वश में न किया तो याद रखिये यह विचित्र सारथी है यह आपको पकड़ कर ऐसे मार्ग की ओर ले जायेगा जो आपके लिये हानिकर होगा। यह मन सोते, जागते, उठते, बैठते हर समय नई से नई दुनिया बनाता रहता है। तब वासना का क्षय कैसे हो सकेगा? और यह इतना चंचल, कपि-स्वभाव सारथी है कि एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं होता। और सच तो यह है कि मन की करनी का ही फल होता है कि मनुष्य जन्म मरण के बन्धन में बंधता है, जन्म मृत्यु के चक्र में घूमता है। अब प्रश्न यह है कि इस सारथी को अपनी इच्छा से जिधर चाहे जाने दिया जाय या इसके ऊपर अंकुश भी लगाया जाय। यदि अंकुश लगाया जाय तो वह कौन सा है? न्याय दर्शन में लिखा है "युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्" एक समय में एक ही काम कर सकना मन का चिह्न है। अब वह हमें पकड़ कर किसी न किसी ओर ले ही जावेगा तो हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि नाशवान्, संसारी वस्तुओं से मन को हटा कर अविनाशी शुद्ध बुद्ध निर्मल ब्रह्म-तत्व की ओर मन को लगाना चाहिए। तभी हम जीवन में इस सारथी का सदुपयोग प्राप्त कर सकेंगे। मन तो विद्युत् से अधिक शक्तिशाली है यदि इसे बुद्धि से बांध दिया जाय तो यह हमारे सम्पूर्ण मनोरथों को सिद्ध कर देगा। अतः इस सारथी को हमें योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस मन पर आप प्रभाव डालना प्रारम्भ कीजिये और इसकी शक्ति देखिए।

मन पर पड़े माता पिता के संस्कारों के अनुसार बच्चों का निर्माण होता है। अमेरिका के प्रेजीडैण्ट गारफील्ड का घातक गीट्र जब पेट में था तब उसकी माता गर्भपात की औषधियाँ खाकर उसे गिराना चाहती थी. वह न गिरा परन्तु माता के मन के संस्कारों का प्रभाव यह पड़ा कि वह हत्यारा बना। नैपोलियन की माता जब गर्भवती थी तब नित्य फौजों की कवायद देखने जाती थी सैनिकों के जोशीले गीतों को सुनकर उस के हृदय में जो प्रबल लहरें उठती थीं उन्होंने नैपोलियन को नैपोलियन बना दिया। प्रिंस बिस्मार्क जिस माता के गर्भ में था वह अपने घर के द्वार पर लगे हुए नैपोलियन की सेना की तलवारों के चिह्नों को जब देखा करती थी उस समय उस के हृदय में फ्रांस से बदला लेने की इच्छा प्रबल हो उठती थी। इन संस्कारों के वेग ने फ्रांस से बदला लेने वाला बिस्मार्क पैदा कर दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं मन शरीर और मनुष्य का निर्माण करता है। वह जिस दिशा में चाहे मनुष्य को ले जा सकता है वह अस्वस्थ को स्वस्थ और स्वस्थ को अस्वस्थ कर सकता है। तभी तो गीता में अर्जुन ने कहा :—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण ! प्रमाथी बलवत् दृढ़म्।
यस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

हे कृष्ण, यह मन बड़ा चञ्चल है, बलवान् दृढ़ और मस्त, इसका वश में करना वैसा ही कठिन है जैसा वायु को वश में करना। सचमुच आंख, कान, नाक, वाणी और त्वचा इसके बिना कुछ नहीं कर सकते। आंख को नचाने वाला यही है।

कान इसी के द्वारा श्रवण करते हैं। यदि यह चाहे तो अश्लील गीतों को सुने और चाहे तो भगवद्भजन को। त्वचा इस के द्वारा ही स्पर्श का अनुभव करती है। भयंकर से भयंकर पीड़ाएं यदि न चाहें तो त्वचा को अनुभव ही न हो। वाणी और धन्य का भी अनुभव यही करता है। यह मनुष्य को सात्विक, राजसिक और तामसिक जिस ओर चाहे ले जा सकता है।

यह इन्द्रियों का घोड़ा इधर उधर भटकना चाहता है। शरीर रूपी रथ में बैठा हुआ आत्मा इन घोड़ों के द्वारा पतन के मार्ग की ओर ले जाया जा रहा है। मन रूपी सारथी चाहे तो उन्हें वश में कर सकता है इसलिये कहा :—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥

जैसे विद्वान् सारथी घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन को चाहिए कि वह विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों को वश में करने के लिये प्रयत्न करे। इस मन्त्र में भी मन को सारथी माना गया है। कहा है :—

"सुवारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयते"

उत्तम सारथी के समान यह मन मनुष्यों का सञ्चालन करता है। यह मन हृदय में स्थित है। अजर है—कभी बूढ़ा नहीं होता। शरीर बूढ़ा हो जाता है परन्तु मन तो कभी बूढ़ा नहीं होता। मन में विद्यमान तृष्णा कभी बूढ़ी नहीं होती। जीवन की अन्तिम सांस तक माया और मोह जो मनकी देन है मनमें युवावस्था की तरह जागृत रहती हैं। इस गति और शक्ति का तो कुछ ठिकाना नहीं। इतना गतिशील और शक्तिशाली है कि इसके द्वारा आप चाहें तो अपना परिवर्तन ही कर सकते हैं। जाति की जाति को भी इसके द्वारा बदला जा सकता है।

"आज" में १६ जनवरी १९६२ को प्रकाशित निम्नलिखित समाचार मन की जविष्ठ शक्ति का ही उपयोग है :—

गङ्गटोक, १६ जनवरी कम्युनिस्ट चीन अपनी भावी पीढ़ी को पूरी तरह माओ त्से-तुङ्गवादी कम्युनिस्ट बनाने के लिए एक बिल्कुल नया ही परीक्षण तिब्बत के शांटङ्ग इलाके में और पश्चिमी एशिया के सिकियांग इलाके में करने में जुटा हुआ है।

तिब्बत से जो खबरें मिली हैं उनसे पता चला है कि इन दोनों क्षेत्रों को आबाद करने के लिए चीनी लोगों ने तीस लाख ऐसे नर नारी वहाँ भेजे हैं जो एकदम कट्टर माओ त्से तुङ्ग-वादी हैं। नया उपनिवेश बसाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को साढ़े सात लाख एकड़ खेती की जमीन, याक तथा भेड़ों का एक जोड़, हल, हंसुआ आदि जैसे खेती के औजार दिये हैं और शुरू में पेट पालने के लिए तथा काम चालू करने के लिए कर्जे तथा सहा-यता के रूप में सामान दिया है।

लाखों की तादाद में और नर नारी भी वहां भेजे जा रहे हैं। जितने भी व्यक्ति अब तक भेजे गये हैं उनमें से एक एक मर्द तथा औरत माओ त्से तुङ्ग को आंख मून्द कर मानने वाला है।

रिपोर्ट तो यहां तक मिली है कि इन लोगों को विवाह शादी करने के झंझट से छुट्टी दे दी गई है। हाँ चीनी जातिको तादाद बढ़ाने के लिये वे अपनी वासना की पूर्ति जरूर कर सकते हैं। ऐसी दशा में वैध या अवैध सम्बन्ध का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। नर नारियों के सहवास से वहाँ जो मानव शिशु जन्म लेते हैं उनकी देखभाल का काम शिशु-रक्षागृहों में ऐसे कट्टर कम्युनिस्टों के सुपुर्द कर दिया जाता है जिनका उन बच्चों से दूर का भी कोई रिश्ता नहीं होता।

जब किसी गर्भिणी को बच्चा जनना होता है तो उसके कोई दो मास पहले उसे ज़बरदस्ती विशेष प्रसूतगृह में जाकर दाखिल हो जाना पड़ता है। वहां उसे दिन रात माओवादी कम्युनिस्ट के वातावरण में रखने की विशेष व्यवस्था की जाती है उसको माओवादी ओपेरा तथा सिनेमा शो दिखाये जाते हैं। हरशो के बाद तमाम भावी माताओं को इकट्ठा करके पूछा जाता है कि चित्र देखकर उन पर कैसा प्रभाव पड़ा। अगर किसी में जरा भी अरुचि या विरोधी भावना पायी जाती है तो उसे उसके लिए डाँट फटकार बतायी जाती है और माओवाद को ठीक से समझने को धमकाया जाता है।

प्रसूतिगृह के सामने प्रति सप्ताह इनसे कम्युनिज्म के नए नारों के साथ हर रोज हलकी कवायद करायी जाती है। हफ्ते में दो बार उनके कमरों के सामने से उन लोगों को माओवादी नारे लगाते गुजारा जाता है जो भावी शिशु के तथाकथित पिता हैं।

जब कोई शिशु जन्म लेता है उसे तुरत उसकी मां से अलग कर दिया जाता है। उसको दूध पिलाने तथा पालने का काम शिशु-रक्षागृह के सरकारी कर्मचारी ही करते हैं। प्रसूता मा जब चलने फिरने लायक हो जाती है तब फिर वापस खेतों पर काम के लिए भेज दी जाती है। जिस बच्चे को उसने जन्म दिया उसके उसे कभी दर्शन तक नहीं कराये जाते हैं। इस तरह के जन्मे बच्चों को जन्म से ही माओ त्से तुङ्गवादी बनाने की इस योजना पर पूरी तरह आचरण किया जा रहा है।

चीनी सरकारी अधिकारियों ने बताया कि इस तरह से बसाये गये लोगों ने अब तक ६६०००० है ट्रैक्टर बिना जुती जमीन को हल चलाकर खेती के लायक बना दिया है। इसके

अलावा इन नयी आबादियों में १५० राज फारम और दो दर्जन पशुपालन फारम स्थापित किए जा चुके हैं।

चीनी उपनिवेश बसाने वाले ये लोग धीमे धीमे जिस तरह से भारत तथा रूस की ओर बढ़ तथा फैल रहे हैं उससे मास्को में गहरी चिन्ता व्यक्त की जा रही बतायी जाती है।

—ए० ए० एन० एस०

यह है मन की शक्ति जो एक जाति की जाति को बदलने का भरोसा रख सकती है। अतः आइए इस शक्तिशाली, सदा युवक मन को वश में करके इसे शिव संकल्पों से भर दें। कार्लाइल ने लिखा है :

"मनुष्य यदि, व्याधि, दरिद्रता और दुर्दैव का ही विचार करता रहे तो उसे ये प्राप्त होंगे और उसे ऐसा मालूम होने लगेगा मानो ये उसके पास पड़े हों। फिर भी वह उनसे गहरा सम्बन्ध न करना चाहेगा वह अपने उत्पन्न किये इन पुत्रों से घबराता रहेगा कि दुर्भाग्य से ये बलायें मेरे शिर पर आ पड़ी हैं"। परन्तु इन चीजों की ओर कभी ध्यान न देकर यदि अपने आपको सदा पूर्ण और सर्वाङ्गयुक्त विचारों से भर लेंगे तो हमारा जीवन मधुर और सफल बनेगा।

इसलिये हे मनुष्य ! तू अपने मनसे दुर्विचारों, अशिव संकल्पों को दूर कर। तू यहां विषय भोग में कहाँ फंसा पड़ा है ? तू दिव्य अपवर्ग का अधिकारी, अनासक्ति के पवित्र मार्ग द्वारा ब्रह्मानन्द के पहुंचने का अधिकारी ? तू क्या नहीं कर सकता। उठ और शिव संकल्पों को धारण कर तेरा जीवन सफल होगा।

इत्योम् सम्

—०—

प० भगवद्दत्त रिचर्स स्कालर
द्वारा सम्पादित
संसार का अमर ग्रन्थ

सत्यार्थप्रकाश

विशेषताएँ

(१) महर्षि की हस्तलिखित प्रति से मिला कर छापा गया है।

(२) पैराग्राफों पर क्रमांक।

(३) हर पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।

(४) अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची

(५) बढ़िया कागज मोटा अक्षर सुनहरी मजबूत जिल्द।

(६) मूल्य केवल १२)

सम्मतियां

(१) पं० युधिष्ठिर मीमांसक

मूल पाठ की दृष्टि से यह संस्करण उत्तम है।

(२) पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु

मेरी दृष्टि में यह सर्वोत्तम संस्करण है।

(३) पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय

मुझे यह संस्करण बहुत ही अच्छा लगा।

(४) पं० प्रकाशवीर शास्त्री

इसे देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

हमारी कुछ प्रेरक पुस्तकें

मन की अपार शक्ति
सुरेशचन्द्र वेदालङ्कार १-२५

हम सुखी कैसे रहें ?
सत्यपाल शास्त्री १-००

हास्य विनोद
जगदीश विद्यार्थी १-२५

वैदिक उदात्त भावनाएँ
जगदीश विद्यार्थी २-००

श्रीमद्दयानन्द प्रकाश
स्वामी सत्यानन्द १२-००

प्रार्थना प्रकाश
जगदीश विद्यार्थी १-२५

आकर्षक व्यक्तित्व कैसे बने ?
सुरेशचन्द्र वेदालङ्कार १-५०

ऋग्वेद शतकम् १-००

यजुर्वेद शतकम् १-००

अथर्ववेद शतकम् १-००

सामवेद शतकम् १-००
जगदीश विद्यार्थी

वेदप्रकाश (मासिक पत्र)
वैदिक सिद्धान्तों का प्रचारक

३) भेजकर एक वर्ष के ग्राहक बनिए। वर्ष में १५० पृष्ठ का वृहद् विशेषांक तथा ३-४ अन्य साधारण विशेषांक निकलते हैं।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६